# CONTENTS


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | Editor Writes | Dr. Rita Pratap | 2 |
| 2. | आभानेरी की बावड़ी व हर्षद माता मंदिर की मूर्तियों में समाहित सांस्कृतिक समन्वय : एक अध्ययन | रामकिशोर सैनी | 3-9 |
| 3. | राजस्थान की ग्रंथ स पदा में रीतिकाव्य चित्रण एवं नायिका-छवि | डॉ. झाबर मल वर्मा | 10-14 |
| 4. | शृंगारिक चित्रण में राजस्थान की दरबारी कला का योगदान (हाड़ौती एवं ढूँढाड़ के विशेष संदर्भ में) | डॉ. रामावतार मीना | 15-24 |
| 5. | हर्षनाथ की मूर्तियों के प्रलेखन द्वारा सांस्कृतिक महत्व में योगदान | महेन्द्र सिंह सुरेला | 25-28 |
| 6. | सौन्दर्य एवं कला | डॉ. कुसुम विन्डवार | 29-31 |
| 7. | मुगल लघु चित्रों के हाशियों में विषय-वस्तु व चित्रकला के त□व | डॉ. शकुन्तला महावर | 32-39 |
| 8. | मुगल कला के अकबर और जहाँगीरकालीन लघु चित्रों में में पशु - पक्षी चित्रण | श्रीमती श्रुति जैन | 40-43 |
| 9. | स्वर्गीय डॉ0 सुमहेन्द्र का कला संसार - एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन (श्रद्धांजलि) | श्रीमति राजेश कुमारी | 44-48 |
| 10. | शेखावाटी क्षेत्र के लघु मन्दिर व परम् धामों का कलात्मक अध्ययन | डॉ. श्री कृष्ण यादव | 49-56 |
| 11. | जैन चित्रों में 'अष्टमांगलिक' प्रतीक : एक अध्ययन | डॉ. बीना जैन | 57-66 |
| 12. | जयपुर केन्द्रीय संग्रहालय : एक परिचय | रमेश चन्द मीणा | 67-72 |
| 13. | The Status of Women in Ancient India | Dr. Shashi Goel | 73-78 |
| 14. | India's Contacts with Central Asia from Remote Past to the Present | Dr. Jyotsna Bakshi | 79-89 |
| 15. | The Temple of Angkor Wat (Cambodia) (1080-1175 AD) | Dr. Rita Pratap | 90-100 |
| 16. | अजंता की जातक कथाओं का चित्र संसार | डॉ. भारत भूषण | 101-107 |

## Editor Writes

Dear Friends,

It is a great pleasure for me to introduce this International Research Journal for scholars of India and Abroad in the field of Humanities, Social Science and Fine-Arts.

I would see that each issue carries very informative and research oriented articles for the scholars. This issue contains two important chapters one by Prof. Jyotsna Bakshi (Political Science) on "India's Contacts with Central Asia from remote Past to the Present". She was a Visiting Prof. in Osh (Kyrgyzstan) and Tashkent (Uzbekistan) for the past six years. The second chapter is by the author on the "Temple of Angkor Wat" (Cambodia) which had been visited in the year 2010. In the forthcoming issues too, I shall be enriching you with such articles.

Suggestions are also welcome by our readers.

*This issue is dedicated to my younger sister Dr. Benu Gupta (Dy. Surgeon, Haryana Govt. Medical Services, Ambala Cant) who passed away recently. According to her wishes the body was donated to P.G.I. Chandigarh for research and eyes to the eye bank. May her soul rest in peace.*

रामकिशोर सैनी
शोधार्थी
सेन्टर फॉर म्यूजियोलॉजी एण्ड कन्जर्वेशन
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# आभानेरी की बावड़ी व हर्षद माता मंदिर की मूर्तियों में समाहित सांस्कृतिक समन्वय : एक अध्ययन

राजस्थान में कूप, सरोवर एवं वापी निर्माण की परम्परा अति प्राचीन रही है, हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो के खनन द्वारा आवासीय भवनों के अन्दर कूप निर्माण के साक्ष्य सामने आये है ये दोनों स्थल आज पाकिस्तान में है परन्तु भारतीय सीमा में कालीबंगा (सूरतगढ़ क्षेत्र में पीलीबंगा के पास) के खनन द्वारा पूर्व हड़प्पा युग की संस्कृति के अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं जो बहुत महत्वपूर्ण है। जल के अभाव में सब शून्य है अतः सभी प्राचीन स्थल नदियों व नालों के किनारे बसे, जहाँ जीवित रहने व कृषि हेतु जल उपलब्ध हो जाता है।[1]

आवागमन से छुटकारा पाने के लिए ज्ञान एवं भक्ति दोनों मार्गों का प्रतिपादन इस देश में सदियों पूर्व किया गया। भक्ति मार्ग में विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा, भजन कीर्तन आवश्यक बताए गए। देवताओं के लिए मंदिरों का निर्माण कराया गया। जिसके द्वारा लोगों का जुड़ाव होता चला गया तथा परिणामस्वरूप स्थापत्य ने जन्म लिया। इसी स्थापत्य के एक प्रकार में हम बावड़ी एवं मंदिरों को स्थान देते हैं।[2]

तालाब का ही सुव्यवस्थित और सुसज्जित रूप कुण्ड व बावड़ी है राजस्थान में बावड़ी या बाव का तात्पर्य एक विशेष प्रकार के जल स्थापत्य से है जिसमें एक गहरा कुँआ अथवा एक बड़ा कुण्ड होता है और पानी खींच कर निकालने की व्यवस्था के साथ ही पानी की सतह तक जाने के लिए सिढ़िया भी बनी होती है। जो कई सतहों एवं मंजिलों में बटी होती है। इन पर अंलकृत द्वार, सुन्दर तोरण तथा देवी देवताओं की प्रतिमाएं बनाई जाती है। ऐसी बावड़ियों का प्रचलन राजस्थान व गुजरात में सबसे अधिक है। वास्तु साहित्य में इनके निर्माण संबंधी विधान भी उपलब्ध है जिनका प्रयोग इनके निर्माण में किया जाता है।[3]

साहित्यिक सन्दर्भ

गंगापुर (भीलवाड़ा) के समीपस्थ 'नादसा' ग्राम के 'यूप स्तम्भ' पर विक्रम संवत 282 (225 ई.) अर्थात ईसा की तीसरी सदी का उल्लेखनीय अभिलेख उत्कीर्ण है। इसमें कूप सरोवर एवं पुष्करराज तीर्थ का उल्लेख मिलता है।[4] राजस्थान के मध्य युग में कई प्राचीन स्थलों के नाम भी कूप (कुआँ) से इंगित हुए जैसे किरात कूप (किराडू–बाड़मेर), पलास कूपिका (फलासिया–मेवाड़), प्रहलाद कूप (पल्लू, बीकानेर) आदि। इसी प्रकार सर (सरोवर) के द्वारा भी दर्जनों स्थल चिन्हित हुए जैसे–अमरसर, कोडमदेसर आदि। यहां, यह भी उल्लेखनीय है

कि राजस्थान के श्रेष्ठि वर्ग एवं धनी लोग जहां वापी, कूप आदि का निर्माण करते थे वहां वे इनके जीर्णोद्वार एवं संरक्षण के प्रति भी पूर्णतया जागरूक थे।

वराहमिहिर कृत 'वृहत संहिता' में उल्लेख है कि देवता नदी, वन, पर्वत और जलाशय के निकट ही निवास करते है। तीर्थ स्थानों की भी स्थिति इसी भांति किसी नदी, झरने या समुद्र के किनारे पर होना निर्धारित की गई। 'विष्णुधर्मोत्तर' में भी ऐसा उल्लेख है कि अर्चना हेतु देव प्रतिमाओं की स्थापना पवित्र स्थानों, दुर्गों, जलाशयों, उद्यानों और सरिता तट पर ही की जानी चाहिए। वास्तव में जल ही सृष्टि का आधार है इसी तथ्य को ध्यान में रखकर ऋषि–मुनियों ने भी अपने–अपने आश्रय नदियों व जलाशयों के किनारे बनवाये।[5]

वाल्मिकी रामायण के 'अरण्य काण्ड' में पंपा नामक पुष्करिणी के समतल घाटों के निर्माण का वर्णन है, उसके स्वच्छ जल में सुवासित कमल खिले है जो कभी मुरझाते नहीं है। 'सुन्दर कांड' में अशोक वाटिका में हनुमान ने ऐसी बावड़िया देखी, जिनमें पीले रंग के कमल खिले हुए थे। ऐसी भी बावड़ियां हुआ करती थी, जिनके भीतर आवासीय व्यवस्था हुआ करती थी क्योंकि कालिदास ने 'रघुवंशम्' में शातकर्णी ऋषि ने एक क्रीड़ा सरोवर का उल्लेख किया है। जिसके भीतर भवनों में संगीत नृत्य के आयोजन संभव थे, पांच अप्सराओं के कारण इसका नाम पंचाप्सर पड़ा। आभानेरी (जिला दौसा), ओसिया (जिला जोधपुर) और भीनमाल (जिला जालौर) स्थित बावड़ियों में ऐसे भीतरी आवास आज भी देखे जा सकते हैं। इन तीनों स्थानों की ये वापिकाएं प्रतिहार कालीन स्थापत्य की अपुनम कृतियां राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत है। कालीदास ने 'मेघदूत' में यक्ष द्वारा अपने घर के भीतर बावड़ी का वर्णन किया है जिनकी सीड़ियों में नीलम जुड़ा हुआ है।

प्राचीन शिलालेखों में बावड़ी के संस्कृत रूप वापी के उल्लेख तो प्रथम शती से मिलने लगते हैं पर सम्भवतः शास्त्रीय स्वरूप बाद में निश्चित हुआ होगा। यह भी निश्चित है कि प्रथम शती में बावड़ी इतने विस्तार से नहीं बनाई जाती थी। इसका विकास धीरे–धीरे हुआ। वास्तुशास्त्र के प्रतिष्ठित ग्रंथों में उत्तर के समरांगण सूत्रधार, अपराजित वृच्छा, राजवल्लभ, वास्तुसा आदि तथा दक्षिणात्य परम्परा के मानसार, मयमत और विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र से वापी एवं उसके निर्माण संबंधी जानकारी मिलती है। अपराजित पृच्छा के अध्याय 74 में बावड़ियों के चार प्रकार बताए गए है। नन्दा जिसमें एक प्रवेश द्वार और तीन कूट हो। ऐसी बावड़िया मनोकामनाएं पूर्ण करती है। दो द्वारों एवं षट कूट वाली सुन्दर बावड़िया भद्रा कहलाती है। देवताओं के लिए भी दुर्लभ बावड़ी जिसमें तीन द्वार तथा नौ कूट होते हैं और चार द्वारों वाली सर्वतोमुख बावड़ी में बारह सूर्य कूट होते है। राजवल्लभ निर्माता को मिलने वाले पुण्यों की चर्चा करता है। इन सभी ग्रंथों में विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र ही ऐसा ग्रंथ है जो वापी के निर्माण संबंधी विस्तृत जानकारी देता है इसके 33 वें अध्याय में वापी की विशेषताओं का वर्णन मिलता है कि परीक्षा के समय जिस किसी भूमि में मीठे पानी की स्थिति हो वही वापी का निर्माण कराना चाहिए।[6]

सामान्यतया वापी, चतुरस, वर्तुल अथवा दीर्घ बनाई जाती है और इसका नाम तीन, चार, पांच, छः या दस दण्ड तक होता है वापी में प्रवेश के लिए चार, दो या एक द्वार होता।

इसके तल के मध्य भाग का नाप दस हाथ हो और गहराई भी पानी से नीचे दस हाथ ही हो, इसके ऊपर दीवार बनाई जाए जो ईंट अथवा पत्थर की हो। पानी की सतह के निकट एक दण्ड का चौकोर खुला ऑगन हो जिससे ऊपर की ओर सीढ़िया बने और इन्हीं सीढ़ियों पर खंभों के सहारे चबूतरे बने। यहां वास्तुशास्त्र का लेख युक्ति पर अधिक जोर देता है। उसके अनुसार चाहे स्थापत्य सपाद अर्थात खंभों पर टिका हो अथवा विपाद, बिना खंभे का हो पर जुड़ाई स्थायी व मजबूत हो। इसके लिए ग्रंथ कर्त्ता युक्ति शब्द का प्रयोग करता है। पाद–सोपान, सीढ़ियां और स्तम्भों से बावड़ी टिकाऊ और मजबूत होती है तथा सुन्दर दिखती है। मुख मण्डप अथवा मुख्य द्वार में कपाट लगे हो ताकि बच्चे आदि गिरे नहीं। यदि वापी वर्तुल (गोल) हो तो पंक्ति (सीढ़िया) घुमावदार–भुजंग आवेष्टन आकृति की होनी चाहिए। यदि वापी का आकार गोल नहीं है तो सीधी सीढ़ियां हो। किनारों पर रहट लगा हो जिससे पानी निकाला जाए और चारों ओर आंगन हो जिसमें देव मूर्तियां बनी हो। अलंकरण की दृष्टि से किन्नर मिथुना बनाया जाये। राधिका बिम्बो में तरूण आदि देवताओं की मूर्तियां बने जिनके दर्शन कर लोग पुण्य प्राप्त कर सके।

निर्माण स्थल

बावड़ियों का निर्माण कहां किया जाए इस संबंध में प्राप्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि अधिकांश बावड़ियां मंदिर के साथ बनी है तथा साथ ही साथ नहर द्वार के पास, धर्मशालाओं के पास तथा रास्ते पर बनाई जाती थी। बावड़ियों का निर्माण समाज के समृद्ध लोग, राज परिवार के सदस्य, सभासद, व्यापारी आदि करवाते थे पर कभी–कभी दास, दासियों और कम सुविधा सम्पन्न लोग भी करवा देते थे। कुछ बावड़ियों पर तो शिलालेख मिले हैं लेकिन कुछ बावड़ियों के निर्माता जनश्रुतियों में ही जीवित रह गए हैं। मध्यकालीन व्यापार में बनजारों का बहुत योगदान रहा है। पशुओं पर सामान लादकर ये लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। स्वाभाविक था कि नगर एवं गांवों की बावड़ियों का उपयोग सबसे अधिक ये ही लोग करते थे। इसलिए बावड़ियों के निर्माण में बनजारों का बड़ा योगदान रहा है।

चांद बावड़ी एवं हर्षद माता मंदिर

बांदीकुई (जिला दौसा) रेलवे स्टेशन से 8 किलोमीटर की दूरी पर आभानेरी गांव में स्थित बावड़ी, चांद बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध है (चित्र–1) बावड़ी से ही जुड़ा वैष्णव मंदिर अब हर्षद माता मंदिर के नाम से जाना जाता है। बावड़ियों के अवशेषों से प्राप्त देव प्र. तिमाओं अन्य मूर्तियों एवं वास्तु तथा कुण्ड में एक ओर महिषासुर मर्दनी तथा गणेश की देव कुलिकाओं से यह ज्ञात होता है कि इस बावड़ी से संयुक्त एक देव प्रसाद भी था। भारतीय जन संस्कृति के पर्वो, उत्सवों में दैनिक पूजा एवं नैमित्तिक कार्यों में जल एवं स्नानादि का महत्व होने से बावड़ी महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

इसके अतिरिक्त इस बावड़ी में पशुओं के पीने के लिए पृथक कुण्ड, सिंचाई एवं अन्य कार्यों के लिए कूप से जल निकालने की व्यवस्था थी। अब यह कूप मिट्टी भर जाने से

बंद हो जाता है। बावड़ी की एक दिशा में ये दो छोटी देव कुलिकाएं बावड़ी के अंदर बनी है जो वर्षा काल में जल स्तर बढ़ जाने पर जलमग्न हो जाती है।

चित्र 1: चांद बावड़ी

बावड़ी से संबंध एक प्रासाद है जिसमें कई शयन कक्ष, वातायन एवं स्तम्भ युक्त आलिन्द है यद्यपि इस बावड़ी से संबंधित कोई अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ है परन्तु मूर्तिकला की शैली एक वस्तुगत तथा आलंकारिक अभिप्रायों के प्रयोग के आधार पर तथा अन्य तिथि युक्त अवशेषों से तुलना करने पर इसे मंडोर एवं नीलकंठ (अलवर) के स्तर युक्त अधिष्ठन वाले मंदिरों के समकालीन माना जा सकता है। इस बावड़ी के देवकोष्ठों के ऊपर चैत्यगवाक्ष के अभिप्रायो का अंकन, कीर्तिमुख के रूप में मौक्ति माला उद्वीर्ण करता हुआ सिंहास्य का अंकन, उद्यान के दृश्यों में आम्रफलों से लदी डालियां, चषक पकड़े हुए सेवक, नृत्यरत मिथुन, अश्वारोहियो की सज्जित पंक्तियों का अंकन किया गया है।[7]

हर्षद माता का मंदिर (चित्र–2) आठवी शताब्दी की प्रतिहार कला का शीर्ष होकर टूटने की स्थिति में आ जाता है लेकिन विशाल परिक्रमाएं तथा उन पर उकेरी गई मूर्तियाँ अभी भी प्राणवान है। हालांकि आभानेरी के इतिहास में सम्मत लिखित अभिलेख उपलब्ध नहीं है तथापि इसका ऐतिहासिक स्वरूप, इसकी प्राचीनता तथा भव्यता की कथा अपने आप कहते जान पड़ते है।

चित्र 2: हर्षद माता का मंदिर

यहां की प्रतिहार कला में गुप्तकालीन शिल्प एवं मूर्तिकला की प्रमाणिकता का समूचा जीवन सौष्ठव आज भी विद्यमान है। गर्भगृह के बाह्य जंघा पर जो शिल्प उकेरा गया है उससे पता चलता है कि यह मंदिर वैष्णव सम्प्रदाय का है। यहां विष्णु और बलराम के हाथों में गदा, चक्र तथा हल व मूसल दिये हुए है जबकि नीचे के हाथ कटे हुए है। मस्त गजो का जो चित्रण मिलता है, वह कलाकारों के कौशल तथा सौन्दर्य बोध का परिचायक है। मंदिर में विष्णु व बलराम का मूर्ति चित्रण प्रमुखता पा सका है तो योगनारायण, सूर्य, गणेश, कुबेर तथा गजलक्ष्मी के मूर्ति शिल्प भी हजारों स्थानो पर उपलब्ध नरेश, गणेश, महषिमर्दिनी, मर्दिनी, पैरो में घुंघुरू बाधते एवं माथे पर टीकी लगाते श्रृंगारत दुर्गा तथा रावण को कैलाश पर्वत उठाते हुए दिखलाया गया है।[8]

बावड़ी का स्थापत्य

अपराजित पृच्छा तथा विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र के अनुसार इस प्रकार की वर्गाकार, चारो ओर से खुली सोपानयुक्त बावड़ी विजया वापी की श्रेणी में रखी जा सकती है। इसमें वापी एवं कुण्ड का समावेश है कुण्ड में सोपान माला की ग्यारह श्रृंखलाएं तीन दिशाओं में है तथा चौथी दिशा में देवकुलिकाएं है। जल स्थापत्य का अंग होने के कारण बावड़ी में जल से संबंधित विभिन्न देव प्रतिमाएं उत्कीर्ण की जाती है। वरूण तथा शेषशायी विष्णु, मकर या सप्त मातृकाओं की प्रतिमाएं भी उत्कीर्ण होती है। गणेश की देवकुलिकाओं में श्रृंगार का दृश्य अंकित है यहां एक नृत्यांगना अपने तबलावादक सेवक के साथ अंकित है तथा दो मिथुन आकृतियों का दोनों ओर अंकन किया गया है। इनके अतिरिक्त उमा माहेश्वर का एक फलक उल्लेखनीय है। बावड़ी का ऊपरी मंजिल का एक भाग उत्तर मध्य युग में जीर्णोद्वार के बाद दुबारा बनाया गया प्रतीत होता है। इस मंजिल के स्थापत्य में मुगल वास्तुकला के अभिप्राय, किले के आकार जैसी रचना बावड़ी के चारों ओर निर्मित की गई है।

हर्षद मंदिर का स्थापत्य एवं चित्रकला

खुजराहो की शैलीगत चित्रकला को भी यहां बहुतायत से उभारा गया है। नायिकाओं के श्रृंगार चित्र, हाथों में फूल थामें कमर को लोच देकर नीचे की ओर बल खती युवतियां एवं मूर्ति शिल्पों में नायिकाओं के पृष्ठ भाग उभारकर हाथों को नृत्य की मुद्रा में उठाना, यहां के शिल्प की विशिष्ठता है अनेक चित्रों में नायिकाओं व नायकों को युद्ध में जाने का आह्वान करती दिखाई देती है तो कुछ चित्रों में उनका रास्ता रोकती भी दिखाई गई हैं। नारी युग्म, (चित्र–3) दम्पत्ति, आमोद प्रमोद, केलि–क्रीडाये तथा आसव पान करते नर–नारियों के बहु आयामी चित्रकला सौष्ठव का चरम है यहां का एक अर्द्धनारीश्वर चित्र जयपुर संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है। कुछ छोटे–छोटे प्रस्तर मूर्ति शिल्प आमेर संग्राहालय में सुरक्षित है।

चित्र संख्या 3: नारी युग्म

मंदिर एक खास ऊंचाई पर स्थित है जो कुछ दूर से ही दिखाई देता है मुख्य हरि मंदिर में प्रवेश के बाद ऊपर की ओर देखा जाए तो दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। मंदिर में खड़गधारी अनुचर तथा विलासवृत्ति के अनेकानेक सुंदर चित्रण उपलब्ध है।

चित्र 4: देवी प्रतिमाएं

यहां के एक स्थान पर ब्रह्मा, शिव व विष्णु को एक साथ भी चित्रित किया गया है। एक अन्य चित्र में भगवान शिव व विष्णु के ऊपरी हाथों में शैव आयुध तथा नीचे वाले हाथों में वैष्णव आयुध सौंपकर अनूठे शिल्प की रचना की गई है शिल्प ग्रंथों में जिस मार्तण्ड भैरव शिल्प का उल्लेख मिलता है, आभानेरी में यह बहुलता से उकेरा गया है। सभी जातियों के लोग यहां समता भाव से रहते है तथा हर्षद माता को अपनी देवी मानते है। चैत्र मास में यहां आसपास के लोगों का मेला भरता है।

सांस्कृतिक समन्वय

भारतीय संस्कृति में जल जीवन दाता है तथा इसे दिव्य माना है। आकाश से गंगा के इस संसार से अवतरित होने से पानी की दिव्यता स्वतः ही जल स्मारकों यथा कुओं कुण्डो तथा सीढ़ीदार कुओं में स्थानान्तरित हो गई। इनकी सीढ़ियों तथा दीर्घाओं पर देवी प्रतिमाएं (चित्र–4) उत्कीर्ण की गई। लोग इन प्रतिमाओं की पूजा अर्चना करते थे। बावड़िया केवल पेयजल की स्त्रोत ही नहीं वरन् ये ऐसा सामाजिक केन्द्र भी रही है जहां महिलाएं स्नान के साथ पूजा अर्चना तथा वार्तालाप करती है। यही नही यहां वैवाहिक संबंध भी तय किये जाते थे। पुरूष इन बावड़ियों पर चौपड़ और सांप–सीढी का खेल खेलने के साथ साथ व्यापारिक संविदाए भी तय किया करते थे।

बावड़ियां अक्सर मंदिर परिसर या व्यापारिक मार्ग में अवस्थित होने के मार्गों से जाने वाले व्यापारियों के माध्यम से वाणिज्यिक सूचनाएं संचारित की जाती थी। यहां की बावड़ी (आभानेरी) में पानी निकास के लिए नालियां बनी है। पिरामिड़ आकार में पांच सीढ़ियों के सेट के साथ तीन दीवारे निर्मित है जहां शंक्वांकार श्रेणी के स्थान पर एक छोटा सा सीढ़ीदार मंच निर्मित है। तीन दीवारे एक सांप सीढी जैसा दृश्य प्रदर्शित करती है। बावड़िया निजी या सामाजिक उपयोग के लिए बनाई जाती थी। अधिकतर ये दान के लिए या फिर

किसी की याद में बनवाई जाती थीं। बावड़ी बनाने का लाभ यह है कि लोगों को जितने पानी की आवश्यकता होती है उतने ही पानी का दोहन किया जाता है तथा लोग पानी को संरक्षित करते हुए उसका विवेकपूर्ण उपयोग करते हैं आज के परिप्रेक्ष्य में देखे तो यह अधिाक चरितार्थ हो रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बावड़ियां जल के परम्परागत स्त्रोत होने के साथ–साथ सामाजिक एकता, धार्मिक एकता एवं समरसता का भी प्रतीक है। इस बावड़ी पर अनेक लोग पूजा अर्चना करते है जो साम्प्रदायिक सद्भावना का द्योतक है तथा लोग अपनी संस्कृति को जानकर आपसी सौहार्द बढ़ाने का कार्य करती है। अतः अंत में बावड़ी सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी में समन्वय प्रदान करने की कोशिश प्राचीन काल से कर रही है और भविष्य में भी इस अक्षुण्णता को बनाये रखेगी।

संदर्भ

1. रतन चन्द्र अग्रवाल; वापी एवं सरोवर की प्राचीन परम्परा, राजस्थान सुजस, 2009 पृष्ठ संख्या 397
2. ब्रजमोहन सिंह परमार; राजस्थान की बावड़ियां : साहित्यिक संदर्भ, राजस्थान सुजस, 2009 पृष्ठ संख्या 402
3. चन्द्रमणि सिंह; बावड़ी स्थापत्य से संबंधित साहित्य, राजस्थान सुजस, 2009 पृष्ठ संख्या 398
4. रतन चन्द्र अग्रवाल; वापी एवं सरोवर की प्राचीन परम्परा, राजस्थान सुजस, 2009 पृष्ठ संख्या 397
5. ब्रजमोहन सिंह परमार; राजस्थान की बावड़ियां : साहित्यिक संदर्भ, राजस्थान सुजस, 2009 पृष्ठ संख्या 402
6. चन्द्रमणि सिंह; बावड़ी स्थापत्य से संबंधित साहित्य, राजस्थान सुजस, 2009 पृष्ठ संख्या 399
7. नीलिमा वशिष्ठ; जल स्थापत्य में अद्वितीय आभानेरी की चांद बावड़ी, राजस्थान सुजस, 2009 पृष्ठ संख्या 401

डॉ. झाबर मल वर्मा

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# राजस्थान की ग्रंथ स पदा में रीतिकाव्य चित्रण एवं नायिका-छवि

कलाऐं हमारी संस्कृति का आधार होती हैं जो स पूर्ण दुनिया को सृजन सूत्र में बांधे रखती हैं और क्षण प्रति क्षण नवीनता का आह्वान करती हैं। जिस संस्कृति की जड़े जितनी प्राचीनता से निकली हुई होती हैं वह संस्कृति उतनी ही स्थायी, सारगर्भित और लालित्यपूर्ण होती है।[१]

भारतीय कला भारतवर्ष के विचार, धर्म, तत्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। भारतीय जन-जीवन की पुष्कल व्या या कला के माध्यम से हुई है। मानव मस्तिष्क की सुकुमार एवं सूक्ष्म अनुभूतिपूर्ण कल्पनाओं को मूर्त रूप प्रदान कर साकार करने में चित्रकला का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है।

जिस प्रकार साहित्य अपने समय का दर्पण कहलाता है और उस समय विशेष की संस्कृति को प्रतिबि बित करता है उसी प्रकार चित्रकला के माध्यम से चित्रकार भी अपने समय के दृश्यमान भाव जगत् को चित्र-तल पर उतार कर विभिन्न शैलियों के द्वारा तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का आंकलन प्रस्तुत करता है।

साहित्य का आधार 'वाणी' है और चित्रकला का आधार 'रूप'। चित्रकला रूप के द्वारा भावाभिव्यक्ति करती है और इसके ज्ञान का माध्यम चक्षु है, परन्तु चक्षु द्वारा हम मात्र दर्शन लाभ कर सकते हैं। साहित्य में भी चित्रकला निहित है। श□दों में ाी रेखांकन की प्रकृति तथा शक्ति निहित रहती है। प्रत्येक श□द अपनी ध्वनि विचित्रता के द्वारा मानस-पटल पर एक प्रकार का अज्ञात चित्र या रूप अवश्य खड़ा कर देता है। अत: चित्र में भले ही साहित्य न हो, परन्तु साहित्य में चित्रात्मकता अवश्य है। चित्र को अगर खण्ड-खण्ड कर देखा जाये तो उसमें केवल रंग तथा रेखायें मिलेंगी और साहित्य को खण्ड-खण्ड कर देखा जाये तो उसमें बिखरे हुये श□द या श□द गु फन प्राप्त होंगे।[२]

कलात्मक दृष्टि रखकर यदि साहित्य का अध्ययन किया जाये तो साहित्य 'कला' की मार्मिक व्या या जान पड़ता है। कवियों का प्रत्येक पद्य एक चित्र और प्रत्येक चित्र कविता जान पड़ता है। नायक-नायिका, राग-रागिनी, ऋतु वर्णन, प्रकृति चित्रण आदि के बिना साहित्य में रस कहाँ है ? इसी प्रकार इन पर आधारित चित्रों को अनदेखा कर दिया जाये तो भारतीय कला में कितना बड़ा प्रश्न चिन्ह लग जायेगा ? यदि यह कहा जाये कि कला ने काव्य को वाणी दी है और काव्य ने कला को चेतना, तो असंगत न होगा।[३]

राजस्थानी शैली में राधा-कृष्ण जिन रूपों में अंकित हुये हैं वे रसमय काव्य के शाश्वत उदाहरण है। रीतिकाव्य विशेष रूप से नायक-नायिका भेद पर केन्द्रित है, जिसका अनेकश: अंकन राजस्थानी शैली में हुआ है। इस अर्थ में हमारा यह कथन युक्तिसंगत है कि कला और साहित्य एक ही सूत्र में बंधे हुये है जिनको अलग नहीं किया जा सकता। भारतीय कला और साहित्य जैसा स बन्ध अन्यत्र

दुर्लभ है।

काव्य और चित्रकला के स बन्धों में प्रमुख रेखा और श□द का अर्न्तस बंध प्रमुख है। विद्वानों का मत है कि चित्रों से ही भाषा विकसित हुई है अर्थात् रेखा का परिष्कृत रूप ही श□द है। इसलिए 'श□द' रेखा से सूक्ष्म और सशक्त है। रेखा यदि 'अणु' है तो श□द 'परमाणु' इसलिए इसकी शक्ति अनन्त है।[ङ] इन दोनों कलाओं के संदर्भ में यदि प्राचीन चित्राक्षरों को देखें तो इनके स बन्ध और अधिक स्पष्ट होते हैं। वर्ण तो एक प्रकार का चित्र ही है। काव्य रचना जिन वर्णों या अक्षरों में अंकित की जाती है उनका मूल उत्स ही चित्राक्षर है। कवि 'श□द चित्र' प्रस्तुत कर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है तो चित्रकार 'रंग और रेखाओं' के द्वारा उस रूपाकार को दृष्टिगत आनन्द के लिए प्रस्तुत करता है। 'लैस्सिंग' ने स्पष्ट श□दों में कहा है-''काव्य बोलता हुआ चित्र है तो चित्र मूक काव्य।''[च]

राजस्थान में काव्य और चित्रकला की समानान्तरता के विकासक्रम में मध्यकाल अपना प्रमुख स्थान रखता है। ऐसा लगता है कि कवि और चित्रकार साथ-साथ मिलकर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते थे। जहाँ कवि बारहमासा का वर्णन कविता में करता था, वहीं चित्रकार तूलिका द्वारा रंग और रेखाओं से वर्णन करता था। राग-रागनियाँ लिखी जाती थी और उन पर चित्रण कार्य बड़ी कुशलता से होता था। राजस्थान में यह पर परा बहुत ही फली-फूली। इसका स पूर्ण श्रेय राजपूत राजाओं को ही जाता है। यहाँ के राजपूत राजाओं का कवि और चित्रकारों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। साथ ही साथ अभिव्यक्ति की आजादी भी प्राप्त थी। यही कारण है कि राजस्थान की कला की चर्चा आज भी होती है। विशेष रूप से काव्य और चित्रकला का स बन्ध बहुत ही गहरा है इसलिए इनका विकास साथ-साथ हुआ। इस स बन्ध को राजस्थानी चित्रकला और रीतिकाव्य में देखा जा सकता है।[छ]

राजपूत राजवंशों की सांस्कृतिक पर परा ने जो विशिष्टताएँ प्रदान की हैं, वे चित्रकला में सहज ही झलकती हैं। चित्रों की विषय वस्तु रागमाला, नायिका भेद, ऋतुमास, कृष्णलीलादि प्रमुख रूप से चित्रित हुई है। वर्षा, ग्रीष्म, शीत ऋतुओं का चित्रण उनकी विशेषता के आधार पर हुआ है। नायिका-भेद का मूल आधार राधा-कृष्ण ही है किन्तु ये राधा-कृष्ण देव कोटि के न होकर सामान्य जन से प्रतीयमान हैं। इन चित्रों के विस्तार के लिए कल्पना का महत योग चित्रकारों ने भव्य रूप में प्रस्तुत किया है। चटकीले रंगों में एक-एक अंग को विशेष रूप से सजाकर विविध रंग विधा में चित्र का मनोरम वातावरण तैयार किया है। रागमाला का चित्रण यहाँ के चित्रकारों का प्रिय विषय रहा है। रसिक-प्रिया का चित्रण वास्तव में रसिकों के लिए हुआ प्रतीत होता है।चित्र के उर्ध्व भाग में रसिक-प्रिया का पद्य लिखा हुआ है तथा नीचे वस्तु का चित्रण नायक-नायिका के रूप में हुआ है।[ज] (चित्र-क)

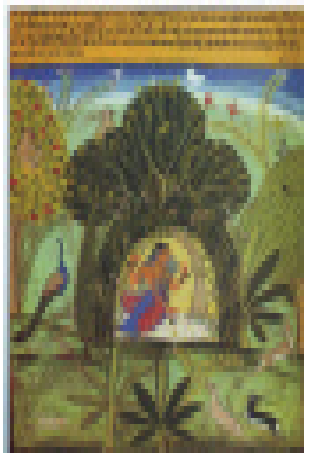

(चित्र–1)
वासक सज्जा नायिका
रसिक–प्रिया, मेवाड़ शैली, 1640 ई.

राजस्थान में धार्मिक एवं सामाजिक विषयों के साथ-साथ लोक जीवन और शृंगार से स

बन्धित विभिन्न कथाओं पर चित्रण कार्य हुआ है। गीतगोविन्द, रसिक-प्रिया, बिहारी सतसई, ढोला मारू, माधवानल कामकंदला, मधुमालती, फूलजी-फूलमति री बात, पन्ना वीरमदे री बात, जलाल-बबूना री बात, सदेवच्द सावलिंगा री वार्ता, कृष्ण-रू मणी री वेलि, मालती-माधव आदि ग्रंथों में प्रेम-प्रसंग, श्रृंगारिक चित्रों को देखा जा सकता है। इसके साथ ही ऋतु-चक्रों का उद्दीपनकारी प्रस्तुतीकरण राजस्थान की चित्र शैलियों में किया गया है। बारहमासा में इसी प्रकार के चित्रों को देखा जा सकता है। जहाँ वर्ष भर की ऋतुओं के आधार पर नायक-नायिका के प्रेम की विभिन्न स्थितियों, विरह एवं मिलन का वर्णन चित्रों के माध्यम से हुआ है। (चित्र-ख)

(चित्र–2)
मुग्धा नायिका
रसिक–प्रिया, मेवाड़ शैली, 1640 ई.1640

रीतिग्रंथों के क ा भावुक, सहृदय ओर निपुण कवि थे। इनके द्वारा रसों विशेष रूप से श्रृंगार रस और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत किये गये। अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर कुछ अधिक झुकाव रहा। इससे श्रृंगार रस के अन्तर्गत मुक्तक रचना हिन्दी में हुई। इस रस का इतना अधिक विस्तार हिन्दी साहित्य में हुआ कि इसके एक अंग को लेकर स्वतंत्र ग्रंथ रचे गये। इस रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका भेद के भीतर दिखाया। रस ग्रंथ वास्तव में नायिका-भेद के ही ग्रंथ हैं। (चित्र-फ)

(चित्र–3)
कृष्णाभिसारिका नायिका मेवाड़ शैली, 17वीं शताब्दी

सौन्दर्य की अभिव्यक्ति नारी के माध्यम से की गई है। सौन्दर्य दर्शन ही कला का उद्देश्य होता है। काव्य के रचयिताओं ने नारी के विविध रूपों, अवस्थाओं, मनोदशाओं तथा स्वभावों का बड़ा सहज वर्णन प्रस्तुत किया है। नारी के इसी अध्ययन को 'नायिका भेद' कहा जाता है। नायिका भेद पर संस्कृत आचार्यों के बाद हिन्दी साहित्य में केशव, देव, बिहारी व मतिराम आदि कवियों ने लेखनी चलाई। इन्हीं काव्यों ने राजस्थानी तूलिकाओं में एक नया यौवन भरा है।

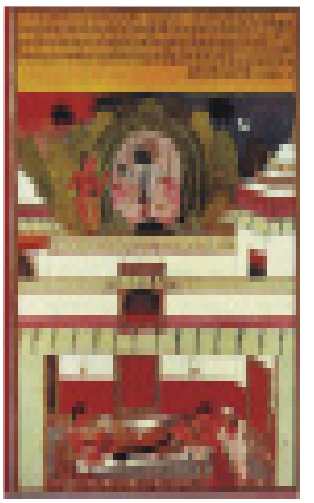

(चित्र–4)
नायिका रसिक–प्रिया, बूंदी शैली, 17वीं शताब्दी

नायक-नायिकाओं को चित्रकारों ने राधा-कृष्ण रूप में ही चित्रित किया है योंकि आदर्श प्रेमी और प्रेमिका का निर्वाह उन्हीं के द्वारा स भव था। राधा-कृष्ण के इस चित्रित रूप में लौकिक

परकीया का स्वरूप नहीं बल्कि आत्मा-परमात्मा के मिलन की प्रतीकात्मक रूप छवि है। जयदेव कृत गीतगोविन्द, बिहारी की सतसई व केशव की रसिक-प्रिया जैसे स पूर्ण काव्यों को चित्रित किया गया है। (चित्र-ब)

नायिका-छवि के अन्तर्गत प्रार भ में अंग-प्रत्यंगों के आधार पर नारी के चार भेद-पद्मनी, चित्रणी, शंखनी तथा हस्तिनी बताये गये हैं। कामसूत्र में-वैवाहिक, कन्या, पारदारिक तथा वैशिक प्रकरणों में नायिका-भेद का सविस्तार वर्णन किया है। काव्यशास्त्र ने इसी वर्गीकरण को अपनी स्वीकृति दी है। चित्र भी अधिकतर इसी भेद पर आधारित है। वात्स्यायन कामसूत्र के अनुसार नायिका के तीन भेद किये गये हैं-स्वकीया, परकीया एवं साधारणी। इसके अतिरिक्त अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ प्रकार बताये गये हैं।[ग] इन नायिकाओं के सभी स्वरूपों का चित्रण लघु-चित्रों में हुआ है। चित्रकारों ने इसी संदर्भ में प्रकृति का चित्रण भी आलंकारिक रूप में साथ-साथ प्रतीकात्मक रूप में परिस्थिति के अनुकूल किया है। यदि नायिका विरहोत्कण्ठिता है तो उसे विलोवृक्ष के नीचे खड़ा दिखाया गया है तथा वातावरण को भी शुष्क रूप में चित्रित किया है और यदि मुदितावस्था में दिखाया गया है तो उसे सारस के जोड़े, तेज बहती नदी, उछलते फव्वारे व झूमते हुये फल-फूलों से लदे वृक्षों के साथ अंकित किया है।[क्क]

प्रेमक्रीड़ा एवं भावना के लिए नायिकों के अपने प्रेमी से स बन्ध एवं उनके प्रति मनोदशा के आधार पर वर्गीकरण महत्वपूर्ण है। साहित्य दर्पण में आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है[क्ख]-

प्रोसितपतिका-जिसका प्रेमी दूर है। व्यापार आदि के सिलसिले में प्रवास पर है।

कलहन्तरिता-जिसने क्रोध में अपने प्रेमी को नकार दिया है। इस पश्चाताप के भाव से भरी नायिका।

खण्डिता - प्रेमी को दूसरी स्त्री में आसक्त द्वेष से भरी हुई अर्थात् ऐसी नायिका जिसका पति रात्रि किसी दूसरी स्त्री के साथ बिताकर प्रातः वापस आया हो।

विप्रल□धा - मिलन स्थान पर प्रेमी के न मिलने पर नाराज नायिका।

उत्का या उत्कण्ठिता - यद्यपि इस अनुपस्थिति में नायक की कोई गलती नहीं है।

वासक सज्जा - अपने प्रेमी के आगमन से पूर्व स्वागत की सभी तैयारी के साथ शृंगार किये नायिका।

स्वाधीन पतिका - जो अपने पति को वश में किये हुये है।

अभिसारिका - मिलन स्थल की ओर जाती हुई नायिका अर्थात् अपने उस प्रेमी से मिलने जाते हुये जो उससे मिलने आया है।

नायिकाओं के इस वर्गीकरण का वर्णन कवियों ने अपनी कलम से तथा चित्रकारों ने अपनी तूलिका से किया है जिसके प्रमाण साहित्य एवं कला संकलन में विद्यमान है।

भारतीय कला में सदैव नारी को सौन्दर्य सिद्धान्त के अनुसार ही चित्रित किया गया है। उसे शालभंजिका व मिथुन रूप में खूब उकेरा है। सभी में उसका नायिका रूप निखर आया है। जयदेव के गीत-गोविन्द ने राजस्थानी व पहाड़ी कलाकारों को खूब प्रभावित किया है।[क्ग]

केशव की रसिक-प्रिया व बिहारी की सतसई जैसे काव्यों को बड़े परिमाण में चित्रित किया है। कृष्णाभिसारिका में ताराच्छादित आकाश, वातावरण में खामोशी, नायिका का नील दुपट्टा व मन में अभिसार भाव लिये दूती के साथ जाती दिखाई गई है। इसी प्रकार शु□लाभिसारिका

में चन्द्र चाँदनी व श्वेत वस्त्र विशेष दर्शनीय हैं। भय, लज्जा, संकोच जेसे भावों को चितेरों ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है।

संदर्भ ग्रंथ


क. जयसिंह नीरज : राजस्थानी चित्रकला, पृ. --क, जयपुर, क--ब

ख गोपाल मधुकर चतुर्वेदी : भारतीय चित्रकला, पृ. क्त्फ, इलाहाबाद, क–त्त–

फ. वही, पृ. क्त्भ

ब. अन्नपूर्णा शु□ला : वॉनगो और निराला (चित्रकला एवं काव्य की अन्तरंगता), पृ. त्त--, जयपुर

भ. वासुदेवशरण अग्रवाल : भारतीय कला, पृ. क्क, वाराणसी, क–म्फ

म. अन्नपूर्णा शु□ला : किशनगढ़ चित्र शैली, पृ. ख्–फ, जयपुर, ख्त्र

त्र. रघुनन्दन प्रसाद तिवारी : भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, पृ. भ–, वाराणसी, क–त्रफ

त्त. आचार्य रामचन्द्र शु□ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. क्म्ख, इलाहाबाद, ख्भ

–. आर.ए. अग्रवाल :भारतीय चित्रकला का विवेचन, पृ. ख्फ, मेरठ, क--भ

क. गणपति चन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य, पृ. म्–म्त्, नई दिल्ली, क–त्त–

क्क. आर.ए. अग्रवाल : भारतीय चित्रकला का विवेचन, पृ. ख्ख्, मेरठ, क--भ

डॉ. रामावतार मीना
व्या याता - चित्रकला,
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, टोंक

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# श्रृंगारिक चित्रण में राजस्थान की दरबारी कला का योगदान (हाड़ौती एवं ढूँढाड़ के विशेष संदर्भ में)

राजस्थानी चित्रकला रस-प्रधान है। भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन इसमें विशेष रूप से हुआ है। राधाकृष्ण की माधुर्य भावना का विस्तृत और गहनतम चित्रण इस चित्रकला की प्रमुख विशेषता है। भक्ति और श्रृंङ्गार का सजीव चित्रण राजस्थानी चित्रकला में विशेष देखने को मिलता है।

राजस्थानी चित्रकला विषय की दृष्टि से अत्यधिक विस्तृत है। राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं, रामकथा, महाभारत और भागवत की विभिन्न कथाएँ, नायक-नायिका भेद, राग-रागिनी, बारहमासा, ऋतु-वर्णन, दरबारी जीवन, उत्सव, शिकार, राजा-रानियों का चित्रांकन, लोकथाएं आदि अनेक विषयों में राजस्थानी चित्रकला का परिपोषण हुआ है। काव्य चित्रण इस शैली की अपनी निजी विशेषता है। रीतिकाल का सजीव चित्रण विशेष रूप से हुआ है वास्तव में राजस्थानी चित्रकला तो हिन्दी काव्यों के गूढ, ग्रन्थों को अभिव्यक्ति देने वाली है।

मध्ययुगीन युग में भक्ति और रीति की अनेक पर पराओं का परिचालन हुआ, जिसमें कि केवल कृष्ण के लीला चरित्रों को ही चित्रकला में अधिकता से स्थान मिला। दोनों के आदि स्त्रोतों में भागवत की मूल भावना ही रही है। भागवत का स्थान कहीं-कहीं सूर के पदों ने ले लिया है। प्रेमा यान काव्य पर परा में, ह मीरहठ, मालती माधव, सोहनी महिवाल, नलदमयंती, शशिपुन्नाहा, लैला मजनूं, रूपमती और बाजबहादुर, हीर-रांझा, ढोलामरवण, मूललदेनिहालदे का चित्रण हुआ है। इस काव्य रूपों का आविर्भाव प्राप्त प्रेम कथाएँ ही हैं। इन काव्य रूपों में व्यक्त प्रेम-कथा चित्रकारों के चित्रों की प्रेरणा भूमि रही है। बिहारी सतसई, रसिकप्रिया, कविप्रिया का चित्रण स्वतंत्र रूप से हुआ है तथा फुटकर दोहों को आधार मानकर भी चित्रण हुआ है। इनके अमरूशतक, गाथा सप्तसती, आर्या सप्तसती, गीतगोविन्द, रस-मंजरी, रसतरंगिणी के पदों का भी सीधा चित्रण हुआ है तथा वे ग्रंथ रीतिकालीन कवियों की उद्‌भावनाओं के आदि स्त्रोत भी है, अतएव जो काव्य स्त्रोत इन कवियों के हैं वे ही इस युग के चित्रकारों के भी है। इन आधारों के साथ एक स्थिति यह भी स्पष्ट थी कि तत्कालीन कवि गायक और चित्रकार एक ही स्थान राज्याश्रय पर एकत्र होते थे। इनका आपसी स पर्क भी एक दूसरे के लिए प्रेरणा का विषय बना प्रतीत होता है।[१]

राजस्थान के राजाओं के आधारों में ललितकलाओं के प्रति एकान्वित प्रेम रहा है। जो कि उनके समय के चित्रों एवं काव्यों में मिलता है। काव्य संगीत की मधुर राग-रागिनियों में निबद्ध होकर प्रस्तुत हुआ है तथा चित्रकला, काव्य और संगीत की गरिमा को लेकर, रागमाला, नायिका-भेद, बारहमासा आदि में व्यक्त है। समसामयिक कवियों की रचनाओं को एवं उनकी कथाओं को लेकर रमणीक विधा में, लोक रूचि के अनुकूल उन्हें चित्रित किया है। रीतिकालीन कवियों के दोहों, कवि□ों और छंदो को, उनके बि बों के सहित कागज की पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत कर प्रेमा यान काव्य पर परा के कथानकों के मार्मिक अंशों को चित्रित किया है।

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शता□दी में राजपूत राजाओं, नरेशों एवं सामंत-उमरावों के यहाँ चित्रकला का विकास द्रुतगति से हुआ। इस विकास में स्थानगत विशेषता का समावेश होता रहा है। यथा स्थानीय शैलियों का स्वरूप अंकित करते हुए, इन स्थानीय विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। रागमाला, नायक-नायिका भेद, बारहमासा, षट् ऋतु, सूर, केशव, बिहारी की पृष्ठभूमि और पदों की अवतारणा करते हुये चित्रकारों ने उन्मुक्त श्रृंगारिक वातावरण का ाोग किया है। इसमें तत्कालीन समसामयिकता ही प्रकट हुई है।

श्रृंगार की शास्त्रीय पर परा में नायिकाओं के चार भेद किये है। पद्मिनी, चित्रणी, शंखणी, हस्थिनी।[6] इन सब भेदों में पद्मिनी का चरित्र सर्वश्रेष्ठ होता है तथा वह औरतों में सर्वो□ाम होती है। मलिक मुह मद जायसी ने पद्मावत में 'पद्मिनी' को ही श्रेष्ठ नायिका के रूप में चित्रित किया है। पद्मिनी को कमल से विशेष अनुराग रहता है। इस नायिका के बाल, नेत्र, गर्दन और अंगुलियाँ विशेष ल बी होती है। दांत, माथा, सीना और नाभि भाग हल्का छोटा होता है। मुख चन्द्र के समान होता है। उसकी देह की उठान हंस के समान होती है। मु य भोजन दुग्ध तथा फूल-प□ाी की शौकिन होती है। इसके सोलहवें वर्ष से सोलहवों रूप निखर उठते हैं।

रागमाला और नायिका भेद के चित्रण में समानता प्रलक्षित होती है, □योंकि नायिका भेद और रागमाला दोनों ही मानव जीवन की सामान्य स्त्री-पुरूषों की सूक्ष्म अनुभूतियों को आधार मान कर प्रस्तुत किए हुये है। ये अनुभूतियां अधिकतर नायक और नायिका के रूप में, राधा-कृष्ण के रूप में प्रतीकात्मक पद्धति में प्रस्तुत हुये है। राजपूत चित्रकला शैली में यह वैशिष्ट विशेष निखार के साथ स्पष्ट ज्ञात होता है।

आचार्य केशवदास की कृतियों में 'कविप्रिया', रसिकप्रिया और विज्ञानगीता का चित्रण हुआ है। केशवदास ने कविप्रिया, रायप्रवीन नर्तकी के हेतु सृजित की थी, जिसका विषय और वर्णित रूप राजस्थान के चित्रकारों को रूचिकर रहे हें। कविप्रिया के साथ ही रसिकप्रिया और विज्ञानगीता की राजस्थान के चित्रकारों के चित्रक आधार हुये है। केशव की चित्रकारों में बढती हुई याती ने, इन चित्रकारों की रामचन्द्रिका की रामकथा पर आधारित चित्र बनाने को प्रेरित किया है।

बिहारी लाल की सतसई में वर्णित नायिकाओं का रूप और उनकी दशाओं के प्रति यहां के चित्रकार आकर्षित हुये है और इन्होंने प्रायः स पूर्ण सतसई का चित्रण किया है। सूरसागर के पदों का चित्रण राजा संसारचन्द के दरबार में अधिक हुआ है। सूरदास, केशवदास, बिहारी आदि कवियों ने मानव जीवन के समस्त व्यापार का जिनका कि स बन्ध यौवन से है, बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण, काव्य विधा में प्रस्तुत किया है। यौवन-विकारगत व्यापारों की सूक्ष्मता, उम्र, अनुभव, शारीरिक मानसिक हलचल, स्थिति, दशा और धारणाओं में व्यक्त करती है। सूरादि के पद श□द विधागत सौन्दर्य के बोध के साथ सांगीतिकता को भी भरपूर पुष्ट और सौष्टव रूप में व्यक्त करते हैं, एक-एक श□द विषयगत बि ब के अवयवों को व्यक्त करता हुआ, स पूर्ण बि ब का रंगमय बोध कराता है। चित्रों के विषयों में बिछुड़ते हुये प्रेमी, विरह वेदना, टीस, उसकी दशों दशाऐं और फिर मिलन, मिलन का सुख विविध रूपों में जैसा कि काव्य विधा में आया है उससे भी कहीं अधिक साकार रूपों में, अनेक आकृतियों में, चित्रकला के माध्यम से तात्कालिक चित्रकारों ने प्रस्तुत किया है। इसमें काव्यगत व्यक्त सांगीतिक परिवेश का भी चित्रकारों ने ध्यान रखा है। कुछ स्वतंत्र चित्रों का तो राग-रागनियों के स बोधनों के माध्यम से सीधा सांगीतिक परिवेश ही आधार रहा है। इसके अतिरिक्त रसों की अभिव्यक्ति, पूर्ण परिपक्वता का भी, सुचारू रूप से नियोजन है। रंग रसों की सरस अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुये है।[प]

केशवदास की रसिकप्रिया और उनकी इस कृति का आधार युवती की किशोरावस्था से लेकर शादी के कुछ समय तक की उम्र है। दूसरे श□दों में किशोर वय से लेकर माता बनने से पहले तक की स्थिति में नारी के प्रति केशव की लेखनी सजग होकर रही है। इसके उपरान्त की स्थिति पर केशव ने काव्य सृष्टि की है किन्तु वह अति अल्प रूप में है। रसिकप्रिया के चित्रों के संदर्भ में कुछ चित्र सन् क्म् ई0 के लगभग के प्राप्त होते हैं जिनका संदर्भ डॉ. कुमारस्वामी ने दिया है। ये चित्र मेट्रोपोलिटन यूजियम से सुरक्षित है। इन चित्रों के पूर्व की कथा इस तरह है, कि केशवदास की रसिकप्रिया की वास्तविक प्रिया 'रायप्रवीन' नर्तकी की प्रशंसा बीरबल ने सुनी। अकबर ओरछा नरेश इन्द्रजीत को 'रायप्रवीन' को मुगल दरबार में भेजने के लिए लिखा किन्तु ओरछा नरेश इन्द्रजीत ने उसे नहीं भेजा। इस पर इन्द्रजीत पर बड़ा जुर्माना हुआ। इसके उपरान्त केशवदास को बीरबल ने मुगल दरबार में बुलाया। यहाँ पर केशवदास ने रसिकप्रिया के दोहों को सकण्ठ सुनाया। केशवदास की रजा से रायप्रवीन इधर आयी। अल्पतम समय में उसने अपनी कला का प्रदर्शन किया। इसके उपरान्त यह वापिस चली गई। ये दोनों चित्र जो अकबर के समय के मिलते है, वे इसी समय के है। इसके उपरान्त रसिकप्रिया राजपूत चित्रकला शैली में तथा पहाड़ी राजपूत चित्रकला की स्थानीय कलमों में अपनी प्रसिद्धि पा गई। भागवतपुराण के उपरान्त पहाड़ी चित्रविधा में तथा राजस्थानी रसिकप्रिया

सर्वाधिक लोकप्रिय चित्रकारों के मध्य चित्रण के हेतु में रही है।[छ]

इस प्रकार शृंगार रस की विभिन्न स्थितियों को अभिव्यक्त करने वाले चित्रों का चित्रण एक विशेष महा का के साथ राजस्थानी चित्रशैली में प्रस्तुत किया गया है। नायक-नायिका के संयोग-वियोग की सूक्ष्म-अंतर्दशाओं की अभिव्यक्ति की गई है। नायिका के विकास कालीन अवस्थाओं का चित्रण है। इस शृंगारिक अभिव्यक्ति में राधा-कृष्ण की सहायता ली गई है। ये ही प्राय: हर भाव व दशा को व्यक्त करने वाले नायक-नायिका हैं जो कि भगवान श्री कृष्ण एवं आद्यशक्ति श्रीराधा की लीलाओं को देखकर हमारा मन प्रेम से झूम उठता है और रोम-रोम प्रफुल्लित हो जाता है। भारतीय चित्रकला ने कृष्ण के सगुण माधुर्य पूर्ण स्वरूप को जिस खूबी के साथ अपनाया है, यह अविस्मरणीय है।[ज]

16वीं शती से 19 वीं शती तक मेवाड़ स्कूल, मारवाड़ स्कूल, हाड़ौती स्कूल एवं ढूँढाड़ स्कूल की विभिन्न शैलियां और उपशैलियाँ और ठिकाणा कला में विकसित राज-स्थानी चित्रकला निश्चय ही भारतीय चित्रकला की प्रमुख दाय है।

हाड़ौती स्कूल

चौहान वंशी हाड़ाओं का प्रसार और प्रताप बूँदी, कोटा, झालावाड़ क्षेत्र में रहा, इसलिए यह हाड़ौती क्षेत्र कहलाया।[झ] यहाँ की चित्रकला का विकास राजस्थानी चित्रकला के अनुकूल ही हुआ। बूँदी शैली, कोटा शैली, झालावाड़ शैली तथा अन्य ठिकाणों की चित्रकला को हम हाड़ौती स्कूल के अन्तर्गत मानते हैं।

प्राकृतिक सौन्दर्य और सुषमा से आवेष्टित हाड़ा राजपूतों के राज्य बूँदी में परिपोषित चित्रकला बूँदी के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ की हरी भरी पहाड़ियां, झील, सरोवर और गहन जंगलों से युक्त प्राकृतिक परिवेश बूँदी के कलात्मक जीवन को प्रभावित करता आया है।

चौदहवीं शती के मध्य (सं. क्फ-त्त) में राजा देवा द्वारा स्थापित बूँदी हाड़ा वीर राजपूतों का प्रमुख राज्य रहा किन्तु बूँदी शैली का इतिहास राव सुरजन (क्भ्ब्-क्भ्त्भ ई.) के समय से ही आँका जाता है। राजा भावसिंह (क्भ्त्-क्म्त्क ई.) की कलाप्रियता ने बूँदी निवासियों को संगीत, काव्य और चित्रकला से परिप्लावित कर दिया। भावसिंह के आश्रय में मतिराम जैसे कवि रहे, जिन्होंने 'ललित ललाम' और 'रसराज' की रचना कर कला-प्रेमियों तथा कलाकारों को प्रभावित किया।[ञ] 'ललित ललाम' में भावसिंह की वीरता, कालमर्मज्ञता, कला-पोषण आदि का सहज ही पता लगता है। उनके समय के चित्रित 'राग-रागिनी', 'नायिका-भेद', 'कृष्ण-लीला' स बंधी अनेक चित्र संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहका ाओं के पास उपल ध है[ट] 'रसराज' पर आधारित चित्रण पर परा इसी समय से प्रार भ हुई। रीतिकाल के अन्त में लालकवि ने राजा बुद्धसिंह (क्म्-भ्-क्स्त्रफ्क ई.) के लिए एक अलंकार ग्रंथ की रचना की, जिससे उनकी विद्वता और कला-मर्मज्ञता का परिचय मिलता है। क्त वीं शती के प्रथम सोपान में बूँदी शैली अत्यधिक विकसित

हुई। चित्रण की बहुलता तथा विशेषता की दृष्टि से यह समय चित्रकला के इतिहास में महत्वपूर्ण है। प्रारि ाक बूँदी शैली की सरलता और मेवाड़ प्रभाव इस समय अपने मौलिक स्वरूप में प्रस्फुटित होने लगा। रंगों का बाहुल्य और चटकीलापन, शारीरिक गठन आदि से युक्त रीतिकालीन शृंगारी काव्य पर आधारित और उससे प्रभावित बूँदी शैली अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

क्त्वीं शती के मध्य राजा उ मेदसिंह के काल (क्स्त्रब्ल-क्स्त्रस्त्रक ई.) की शैली में नवीन मोड़ आया, जिसमें भावनाओं की सरलता, प्रकृति की विविधता, पशु-पक्षियों तथा सतरंगे बादलों, जलाशयों आदि के चित्रण की बहुलता और नायक-नायिकाओं के शारीरिक सौन्दर्य की तीव्रता तथा तूलिका की सुदृढ़ता और स्निगधता सहज ही परिलक्षित होती है। मुगल प्रभाव की झलक होते हुये भी शैली में अपनी मौलिकता और आकर्षण है, प्रिंस ऑफ वेल्स यूजियम का संग्रह तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली का 'रसिकप्रिया' का अधूरा सैट इसी काल का है।[क]

संसार भर में बूँदी शैली के चित्र बहुलता से उपल□ध होते हैं, अत: उनके चित्रांकन की विषयवस्तु भी वैविध्यपूर्ण है। राग-रागिनी, नायिकाभेद, ऋतु-वर्णन, बारहमासा, कृष्णलीला, रासलीला तथा अनेक संस्कृत और हिन्दी ग्रंथों का चित्रण बूँदी शैली की निजी विशेषता रही है। 'रसिकप्रिया' 'कविप्रिया', 'बिहारी सतसई', 'रसराज' जैसे ग्रंथों या स्फुट पदों का चित्रांकन बूँदी शैली में देखते ही बनता है। वल्लभकुल की प्रधानता के कारण कृष्ण-चरित का अंकन बूँदी शैली का प्रिय विषय रहा है।[क्क]

बूँदी शैली की आकृतियां साधारणत: ल बी, शरीर पतले और स्फूर्तिदायक दिखायी देते है। स्त्रियों के अधर अरूण, नासिका साधारण छोटी, मुख गोलाकृत और चिबुक पीछे की ओर झुकी छोटी रहती है। ग्रीवा छोटी और अलंकारों से आच्छादित वक्ष:स्थल आगे निकला एवं कंचुकी में कसा हुआ, कटि क्षीण तथा स्फूर्तिदायक, भाव-भंगिमा आदि शैली की अपनी विशेषताएं है। पुरूषों की आकृति में नीचे की ओर झूकी पगड़ियां, ल बे जामे, कमर में दुपट्टा तथा पैरों में चुस्त पायजामा रहता है। अंलकारों से युक्त नीलवर्ण या गौरवर्ण के पुरूष दृष्टव्य हैं।[क्ख]

बूँदी शैली में जैसा ही प्राकृतिक वैभव देखने को मिलता है। रंग-बिरंगे बादलों से युक्त नीला आकाश, मयूर, गिलहरी, शुक, बगुला, हिरण, बंदर, हाथी, सिंह आदि से युक्त प्राकृतिक परिवेश, सघन वन-उपवन में अनेक प्रकार के फूल और फलों से लदे हुये वृक्ष, लता, पौधे, कमलों से आच्छादित सरोवर जिसमें केलि करते हुए हंस, वकुल और मछलियां। प्रकृति का सौन्दर्य जितना विराट, विविध

और रंजित बूँदी शैली में मिलता है, वैसा किशनगढ शैली को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। (चित्र-क)

चौहान राजपूतों की हाड़ा शाखा के प्रभुत्व के कारण हाड़ौती का कोटा प्रान्तर प्राचीन समय से ही कलात्मक धरोहर के लिए प्रसिद्ध रहा है। सत्रहवीं शती के प्रार भ तक हाड़ौती की राजधानी बूँदी रही और कोटा वहां के राजकुमारों की जागीर में रहा। क्म्ख्ब ई. में बूँदी के राव रतन के राजकुमार माधोसिंह की वीरता, कूटनीति एवं सेवा के कारण कोटा को अलग राज्य का दर्जा दे दिया गया और इस प्रकार कोटा फ्म् गांवों का हाड़ाओं का दूसरा राज्य बन गया। चित्रकला के उत्कर्ष की दृष्टि से कोटा शैली बूँदी की ही प्रशाखा मानी जा सकती है। कलाकारों और चितारों के आदान-प्रदान के कारण प्रार भक कोटा के चित्र बूँदी शैली के प्रभाव से युक्त है।

महारावल दर्जनशाल के बाद महारावल शत्रुशाल (क्स्त्रब्--क्स्त्रम्म् ई.) का नाम कोटा कलम के उत्थान के लिए विशेष उल्लेखनीय है। उनके समय में जालिम सिंह झाला कोटा दरबार से जुड़े जिन्होंने अपनी सूझबूझ, चतुराई, वीरता और विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण फौजदार के पद पर रहकर कोटा राज्य को स्थायित्व प्रदान कर समृद्धिशाली बनाया। इनके समय में पूर्व पार परिक कोटा कलम विकसित होती रही। राजकीय संग्रहालय कोटा का भागवत का लघु सचित्र ग्रंथ इन्हीं के राज्यकाल में चित्रित हुआ। इसके साथ ही 'कष्ण-चरित्र', 'शिकार', 'राग-रागिनी', बारहमासा', आदि विषयों से स बन्धित चित्र भी कोटा कलम में विस्तार से बने जो कुमार संग्राम सिंह संग्रहालय, जयपुर एवं राव माधोसिंह यूजियम ट्रस्ट, सिटी पैलेस, कोटा में विशेष दृष्टव्य है।

महारावल शत्रुशाल नाऔलाद रहे, अत: उनके बाद उनके भाई गुमान सिंह क्स्त्रम्म्ई. मे गद्दी पर बैठे। वे कला-प्रमी एवं कलाओं को संरक्षण देने वाले राजा थे। उनके समय में चित्रित 'रागमाला' सैट कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण दाय है। इसके चित्रण स बन्धी ख्ब लघु चित्र सरस्वती भण्डार, उदयपुर में उपल□ध हैं। क्स्त्रम्त् ई. में डालू नाम के चित्रकार द्वारा चित्रित एवं रामकिशन द्वारा लिखित यह कोटा कलम का सर्वाधिक बड़ा रागमाला सैट माना जाता हैं।

कोटा शैली में वल्लभ स प्रदाय का प्रभाव होने के कारण नर-नारियों के अंग-प्रत्यंगों का अंकन गोस्वामियों तथा पुजारियों की भांति पुष्ट एवं प्रभावशाली है। भारी और गठीला शरीर, दीप्ति युक्त चेहरा, मोटे नेत्र, तीखे नाक, पगड़ियों, अंगरखों तथा नारी सुलभ वेशभूषा में राजस्थानी झलक कोटा शैली की निजी विशेषता रही है।

कोटा में गहन जंगल रहे है, अत: प्रकृति-परिवेश का चित्रण कोटा शैली में सतरंगा है। शिकार के चित्रों की बहुलता के कारण कोटा शैली की अलग ही पहचान बन गयी है। शेर, चीते, हिरण, नीलगाय, सूअर आदि पशुओं से भरे जंगल और उनमें घेराव कर शिकार करते सामंतों का चित्रण कोटा शैली की अनोखी दाय है। यह प्रसन्नता की बात है कि लघु चित्रों के साथ ही कुछ बड़ी वसलियों पर शिकार एवं उत्सव एवं त्यौहार

की सवारी के समूह चित्र कोटा शैली में विशेष बने हैं लाल, सुनहरी, हरा, श्वेत रंगों का प्रयोग कोटा शैली में विशेष हुआ है।

ढूँढाड़ स्कूल

प्राचीन समय में जयुपर और इसके आस-पास का क्षेत्र ढूँढाड़ कहलाता था। जयपुर, शेखावाटी और अलवर के अधिकतर भाग ढूँढाड़ प्रदेश के नाम से आज भी जाने जाते है। विद्वानों का मत है कि ढूण्ढ नामक राक्षस के कारण इस प्रदेश का नाम ढूँढाड़ पड़ा। कुछ का कथन है कि उजड़े हुये और मरू के टीलों से युक्त होने के कारण यह प्रदेश ढूँढाड़ कहलाया। ढूँढ नदी भी इसी के नामकरण का प्रमुख आधार मानी जा सकती है।[क्प]

कुशवाह वंश का दसवीं-ग्यारहवीं शता□दी में ग्वालियर के पास नरवर में वृहद् साम्राज्य रहा। ग्यारहवीं शता□दी में सोढदेव अपने पुत्र दूलहराय के साथ ढूँढाड़ प्रदेश में आये और धीरे-धीरे उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इस प्रकार ढूँढाड़ प्रदेश में कुशवाहों का वृहद् साम्राज्य स्थापित हो गया। आमेर कला एवं संस्कृति का मु य केन्द्र रहा है।[क्ब]

आमेर क्क्वीं शता□दी में कुशवाह राजपूतों की राजधानी रहा, किन्तु आमेर शैली के प्राचीन उदाहरण क्म से क्म्क्ब ई. के आस-पास आमेर की छतरियों के भि□ा चित्रों में उपल□ध होते हैं। बैराठ के तथाकथित मुगल गार्डन और मौजमाबाद के भि□ा चित्रों में भी इस शैली का प्रारूप दर्शनीय है। आमेर शैली पर मुगल शैली का प्रभाव अधिक है। क्म वीं शती के मध्य में राजस्थान के राजा अकबर महान की अधीनता स्वीकार करने में लगे थे। अकबर ने सन् क्भ्म्ख में सबसे पहले अजमेर के राजा भारमल की पुत्री से विवाह करके राजस्थान के राजघरानों से अपने स बन्धों की भूमिका प्रार भ की। राज मानसिंह के समय (क्भ्त्--क्म्क्ब ई.) मुगल साम्राज्य से कछवाह वंश के स बन्ध बड़े गहन थे, अतएव कलात्मक आदान-प्रदान बहुत स्वाभाविक था।[क्प]

आमेर शैली का दूसरा चरण मिर्जा राजा जयसिंह (क्म्ख्-क्म्स्त्र ई.) से प्रार भ होता है। बिहारी जैसे रीतिकालीन श□द चित्रकार मिर्जाराजा के दरबारी रत्न थे, जिनकी 'बिहारी सतसई' ने अनेक चित्रकारों और रसिकजनों को प्रभावित किया। शृंगार रस के ग्रंथों में जितनी याति और जितना मान 'बिहारी सतसई' का हुआ उतना और किसी का नहीं। इसका एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है। इसकी पचासों टीकाएं रची गई।[क्म]

जयपुर को आमेर शैली विरासत के रूप में मिली। या यों कहना चाहिए कि आमेर शैली ही जयपुर शहर बसने के कारण नये रंग -रूप में विकसित हुई तथा तभी से जयपुर शैली के नाम से जानी जाने लगी। महाराजा सवाई जयसिंह ने जयपुर शहर का निर्माण (क्स्त्रख्स्त्र ई.) में कराना प्रार भ किया और आमेर से हटाकर जयपुर

को बड़े वैज्ञानिक और नियमबद्ध तरीके से बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया।[क्ख] वे महान गणितज्ञ, ज्योतिषि, नक्षत्रशास्त्री तथा कला-प्रेमी राजा थे, अत: उन्होंने वेधशाला, चन्द्रमहल, जयनिवास बाग, तालकटोरा, सिसोदिया रानी का महल जैसे भव्य इमारतें बनाकर जयपुर को एक नवीन आयाम दिया। अपने आकर्षक शिल्प-सौष्ठव, मोहक रंग-विधान और सुव्यवस्थित बसावट के कारण जयपुर भारत का प्रसिद्ध गुलाबी नगर रहा है। श्रेष्ठ लघुचित्रों, कलात्मक उद्योग, उल्लासपूर्ण त्यौहार तथा रंग-बिरंगी वेशभूषा के कारण यह शहर प्रार भ से ही संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है।[क्ग]

गुलाबी नगर जयपुर के निर्माता सवाई जयसिंह का काल (क्म---क्स्त्रब्प ई.) अन्य कलाओं के साथ-साथ चित्रकला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण रहा है। सवाई प्रताप सिंह (क्स्त्रस्त्र--क्त्फ ई.) कला प्रेमी और साहित्यिक अभिरूचि के राजा थे, अत: उन्होंने जयपुर के कलात्मक जीवन में नवीन पृष्ठ जोड़े। धर्म और काव्य के प्रति उनकी विशेष रूचि थी। वे स्वयं 'ब्रजनिधि' के नाम से काव्य रचना करते थे और पुष्टिमार्गी उपासक होने के कारण कृष्ण-भक्ति में विशेष अनुराग रखते थे। इनके द्वारा रचित इक्कीस ग्रंथ उलप□ध हैं। जगत् प्रसिद्ध हवामहल का निर्माण इन्हीं के समय में हुआ।[क्घ]

सवाई प्रतापसिंह कवि, चित्रकार और भक्त होने के कारण अनेक कवि और चित्रकार उनके दरबार की शोभा बढाते थे। इनके समय में 'राधा-कृष्ण की लीलाओं', 'नायिका-भेद', 'राग-रागिनी', ऋतु-वर्णन' आदि से स बन्धित चित्रांकन विशेष रूप से हुआ। सवाई प्रतापसिंह के बाद चित्रकला की मौलिक दाय सवाई जगतसिंह (क्त्फ-क्त्क्त ई0) तक चलती रही। उनके दरबार में पद्माकर जैसे प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि थे, जिन्होंने 'जगद्-विनोद', की रचना कर जयपुर घराने को 'बिहारी सतसई' से जोड़ दिया।

(चित्र 2) सावन मास (बारहमासा) 1650 ई., जयपुर शैली, कुँवर संग्राम सिंह संग्रहालय, जयपुर

जयपुर शैली के अन्तर्गत लघुचित्रों एवं पोथी चित्रों की पर परा में 'गीतगोविन्द', 'रामायण', 'कृष्ण-लीला', दुर्गासप्तशती, 'महाभारत', 'राग-रागिनी', 'बारहमासा', 'नायिकाभेद', आदि का चित्रण बहुलता से हुआ है। इस शैली के चित्रों मैं पुरूष तथा महिलाओं के कद आनुपातिक हैं। पुरूष पात्रों के चेहरे साफ तथा आँखे खंजनाकार हैं। उन्हें अधिकतर तलवार लिए अंकित किया गया है। वस्त्राभूषणों में पुरूषों को विवाह के समय तुर्रा-कलंगी लगा सेहरा, कानों में लोंग बाली या गुर्दा पहने दिखाया गया है।

सुस पन्न व्यक्ति पगड़ी, कु□र्ता, जामा, चौगा, अंगरखी, पायजामा, कमरबन्द, पटका, जूता आदि पहने हुये अंकित हुआ है।[ङ] (चित्र-ख)

नारी पात्रों का अंकन स्वस्थ, आँखे बड़ी, ल बी केशराशि, भरा हुआ शरीर तथा सुहावनी मुद्रा में हुआ है। अन्य राजस्थानी शैलियों की भांति इस शैली में भी नारियां टीका, टोंटी, बाली, हार, हंसली, सतलड़ी, टेवटा, कण्ठा, बाजूबंद, चूड़ी, पायजेब, आदि से विभूषित हैं। वस्त्रांकन में चोली, कु□र्ता, दुपट्टा लहंगा, बेसर, तिलक और कामदार जूतियों का प्रचलन अधिक रहा है।[ख]

कलाकरों ने पृष्ठभूमि के लिए उद्यानों का अंकन बड़ी दक्षता से किया है। शेर, चीता, हाथी, बकरी, भेड़, ऊँट, घोड़ा, गाय, बैल, मोर, बतख, तोता आदि का विषयानुकूल अंकन हुआ है।

अन्य शैलियों की भांति अलवर शैली का जन्म भी अलवर राज्य की स्थापना के बाद से ही माना जाता है। रावराजा प्रतापसिंह जी (क्स्त्रभ्म्-क्स्त्र-¯ ई.) ने अपनी वीरता, कुशलता एवं राजनीतिज्ञता के कारण जयपुर और भरतपुर के कुछ भाग पर अधिकार कर अलवर राज्य की स्थापना की।[ख]

अलवर के महाराजा विनय सिंह जी को सचित्र पुस्तकों एवं लिपटवाँ पट्चित्रों के के निर्माण का अधिक शौक था। यही कारण है कि उन्होंने गुलाम अली जैसे सिद्ध कलाकारों, आगामिर्जा देहलवी जैसे सुलेखकों एवं नत्थाशाह दरवेश जैसे जिल्दसाजों, को राजकीय स मान देकर दिल्ली से बुलवाया। 'रामायण', 'महाभारत', 'श्रीमद्भागवत गीता', 'गीतगोविन्द', 'दुर्गासप्तशती', 'गुलिस्ता', 'कुरान' आदि ग्रंथों का सुलेखन एवं चित्राकंन विनयसिंह जी की कलाप्रियता का परिचायक है।[ख]

अलवर शैली में राग-रागनियों के अनेक सैट प्राप्त है, जिनमें से अधिकतर का चित्रांकन इनके समय (विनयसिंह जी) में हुआ। आनन्द राम कवि के छंदो पर आधारित 'बारहमासा' का सुन्दर सैट इसी समय का है।

अलवर शैली में विषय की दृष्टि से विविधता रही है। ब तावरसिंह के समय तक राजपूती दरबारी वैभव, महफिले, कृष्णलीला, रामलीला, प्राकृतिक परिवेश में साधु-सन्तों एवं नाथों से धर्म चर्चा राग-रागनियों आदि का विशेष चित्रण हुआ है। विनयसिंह जी और बलवन्त सिंह जी ने 'राग-रागिनी' 'बारहमासा' तथा हिन्दी की पुस्तकों का चित्रण विशेष करवाया जिसमें महाभारत, गीता, रामायण, शिव-कवच, दुर्गा-सप्तशती, गीतगोविन्द, काली सहस्रनामा, माहिमन-स्रोत आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

अपने चरम उत्कर्ष के समय में अलवर शैली में ईरानी, मुगल और राजस्थानी विशेषत: जयपुर शैली का आश्चर्यजनक सन्तुलित समन्वय देखते ही बनता है। इस समन्वय के कारण अलवर शैली के स्वरूप को आसानी से पहचाना जा सकता है। पुरूषों के मु ा की आकृति आम की श□ल में अर्थात् ठोड़ी में थोड़-सा खम देकर बनाई गई है।

स्त्रियों के कद कुछ ठिगने, उठी हुई वेणियां, अत्यधिक परिश्रम से बनाये गये अंग-प्रत्यंग अलवर शैली की निजी विशेषता है। वेशभूषा में स्थानीय प्रभाव पगड़ियों के बंधेज में स्पष्ट झलकता है। पुरूषों एवं स्त्रियों के पहनावे में राजपूती एवं मुगलई वेशभूषा का प्रभाव लक्षित होता है। अलवर का प्राकृतिक परिवेश इस शैली के चित्रों में वन-उपवन, कुंज, विहार, महल, अटारी आदि के चित्रांकन में देखा जा सकता है।[ख्]

संदर्भ


क. रघुनंदन प्रसाद तिवारी : भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व पृ. ख्क्त्र, वाराणसी, क-त्रफ

ख सुरेन्द्र सिंह चौहान : राजस्थानी चित्रकला, पृ.क्फ्त्र, दिल्ली, क--ब

फ. रघुनंदन प्रसाद तिवारी : भारतीय चित्रकला और उसके मूल तत्व, पृ. ख्म्ख-ख्म्फ, वाराणसी, क-त्रफ

ब वही : पृ. ख्म्फ

भ. प्रेम शंकर द्विवेदी: भारतीय चित्रकला के विविध आयाम, पृ. ख्क्म, वाराणसी, ख्त्र

म. जयसिंह नीरज एवं भगवती लाल शर्मा : राजस्थान की सांस्कृतिक परंपरा, पृ. त्त्र, जयपुर

त्र. भोला शंकर व्यास : मधुमति, पृ. क्ब्त, अप्रेल-जुलाई, क-म्ख

त्त प्रमोद चन्द्र : बूँदी पेंटिंग पृ.फ, देहली, क-भ-.

-. सुरेन्द्र सिंह चौहान : राजस्थानी चित्रकला, पृ.त्त्क दिल्ली, क--ब

क. आदर्श बनर्जी : इलस्ट्रेशन टु दी रसिकप्रिया फ्रॉम बूँदी-कोटा, ललित कला अकादमी, क. फ-ब, पृ. म्त्र, कलक□ा, क-म्त्र,

क्क. महेन्द्र कुमार शर्मा (सुमहेन्द्र) : राजस्थानी रागमाला चित्र परंपरा, पृ. त्त, जयपुर, क--

क्ख रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ. ख्ख, ख्ख्क, जयपुर, ख्त्र

क्फ. वी.एस. भार्गव : दि राइज ऑफ दि कच्छावाज इन ढूँढाड़, पृ. क-ख, देहली, क-त्र7

क्ब एम.एल. शर्मा : हिस्ट्री ऑफ जयपुर स्टेट, पृ. क्क, जयपुर क-म-.

क्भ. सुरेन्द्र सिंह चौहान : राजस्थानी चित्रकला, पृ. ब्फ, दिल्ली, क--ब

जयसिंह नीरज एवं भगवती लाल शर्मा : राजस्थान की सांस्कृतिक पर परा, पृ. त्त-त्त-. जयपुर, ख

क्म. आशुतोष दाधीच : ढूँढाड़ की भि□ाचित्रकला का इतिहास, (आमेर एवं जयपुर) पृ. फ--ब. जयपुर, क--ब

आचार्य रामचन्द्र शु□ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. क्म्त्र-म्त, इलाहाबाद, ख्भ

सुखवीर सिंह गहलोत : राजस्थान का इतिहास कोश, पृ. ख्त्र, जयपुर, ख्त्र

क्त्र. कार्ल खण्डालावाला : वाल पेंटिंग्स फ्रॉम आमेर, पृ. भूमिका, नई दिल्ली, क-त्रब

क्त. आनंद शर्मा : जुझारू राजा सवाई जयसिंह, पृ. फ्त, धर्मयुग , ख्त्र नव बर क-त्त

क-. सुरेन्द्र सिंह चौहान : राजस्थानी चित्रकला, पृ. ब्भ, दिल्ली, क--ब

महेन्द्र सिंह सुरेला
शोधार्थी
सेन्टर फॉर म्यूजियोलॉजी एण्ड कन्जर्वेशन
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# हर्षनाथ की मूर्तियों के प्रलेखन द्वारा सांस्कृतिक महत्व में योगदान

सीकर से दक्षिण में अरावली पर्वत की तलहटी में एक गांव है हर्षनाथ जिसकी ऊँचाई समुद्री तट से 3000 फीट है। ऐसा माना जाता है कि जब शंकर भगवान ने त्रिपुरासुर का वध किया,तो देवताओं ने इसी पहाड़ी पर बैठकर शंकर भगवान को प्रसन्न किया था। इसलिए इस पहाड़ी का नाम हर्षनाथ पड़ गया। पहाड़ी पर भगवान शंकर का मन्दिर है।

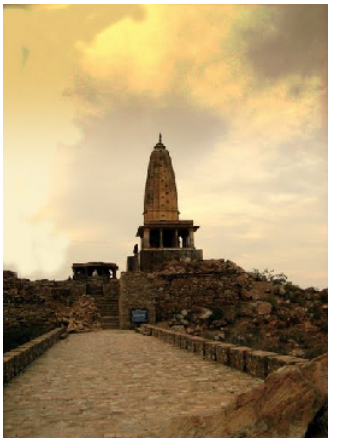

चित्र–21: हर्षनाथ मन्दिर

भाग्यवशात् प्राचीन हर्षनाथ मंदिर से चाहमान विग्रहराज द्वितीय का विक्रम संवत् 1030[1] एक अभिलेख प्राप्त होता है जिसमें हर्षनाथ का विशद् वर्णन है। अभिलेख के अनुसार मंदिर का निर्माण हर्षगिरी पर विक्रम संवत् 1013 की आषाढ़ मास की शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को सम्पूर्ण हुआ था।[2] यह अल्लट नाम के शैव आचार्य द्वारा बनवाया गया था, जो यहीं निवास करते थे। इस मंदिर का निर्माण जनता द्वारा दिये गये दान की राशि से संभव हुआ था।[3] यहा श्रीहर्ष[4] नाम से महादेव की उपासना की जाती है। यह नाम कही और प्रचलित नही है। शिव के इसी विशेषण के आधार पर पहाडी का नाम भी हर्षगिरी[5] पड़ गया। यहॉ शिव के त्रिपुरान्तक[6] स्वरूप एवं त्रिपुर–विजय के उपरान्त हर्षोल्लास से गद्गद हर्षदेव[7] नाम से शिव की अर्चना की गई है।

चित्र–2: अलंकृत प्रतिमाएँ

मंदिर का सौदर्न्य उसके विस्तृत सभामंडप और तोरणद्वार[8] में निहित था। गर्भगृह के बिल्कुल सामने नन्दी की अर्चना की गई। मंदिर का सौन्दर्य उसके विस्तृत सभ: ाामण्डप और तोरणद्वारा[9] में निहित था। गर्भगृह के बिल्कुल सामने नन्दी की अलंकृत प्रतिमा स्थापित थी। इस मंदिर से संयुक्त छोटे आयतनो में विकटा

एवं पांडवों की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित थी। अभिलेख में मंदिर से जुडे अन्य भवनो का भी वर्णन है। मंदिर का स्वयं का उद्यान था जिसे हर्षदेव की अर्चना के लिये पुष्प प्राप्त होते थे। पशुओ के पानी के लिये बावडी तथा शुद्व जल के लिये एक कूप थी जो पीने तथा उद्यान सींचने के कार्य आता था। मंदिर के सामने का प्रागंण चिकने पत्थरो से जुडा हुआ था जो सपाट तथा चलने में सुगम था। वापी, कूप, उद्यान आदि के निर्माण का कार्य भावद्योत द्वारा पूरा करवाया गया, जो कि अल्लट के शिष्य थे। यह भी शैव आचार्य थे तथा अल्लट की मृत्यु के बाद इन्होने ही मंदिर का शेष निर्माण कार्य भार वहन किया था।

चित्र–3: अलंकृत हाथी प्रतिमा

वर्तमान समय में हर्षनाथ मूर्तियों का वर्तमान प्रलेखन नहीं है जिसके कारण इसका सांस्कृतिक महत्व पूर्ण रूप से परिलक्षित नही हो पाता है और प्रलेखन के नाम पर केवल सामान्य नाम देकर उनका बहुत ही सूक्ष्म जानकारी एक पंजिका में दर्ज है जो डिजिटल प्रलेखन एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति शोध, शिक्षा, अनुसंधान एवं पुरातात्विक, एवं रा. जस्थान के सांस्कृतिक इतिहास के लिए पर्याप्त नहीं है। मूर्तिकला कला के क्षेत्र में राजस्थान हमेशा से ही अपनी सभ्यता, संस्कृति कला को सहेज के रखा है और इसलिए मूर्तिकला को राजस्थान में अनुकूल वातावरण मिला और इसी कारण राजस्थान की मूर्तिकला आज अपने इस विश्वविख्यात स्तर पर पहुंच गई है। फिर भी राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में उत्कृष्ट मूर्तिकला होते हुए भी लोग उसके बारे में सही तरह से नहीं जानते है जिसके कारण राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन अधूरा रह जाता है जो कि एक सुनिश्चित प्रलेखन द्वारा संभव है।

हर्षनाथ की मूर्तियों के प्रलेखन का उद्देश्य : –

प्रलेखन :–मानव के इतिहास, विकास एवं संस्कृतियो अथवा प्राकृतिक इतिहास एवं पर्यावरण इत्यादि को संग्रहित वस्तुओ के माध्यम से उद्धाटित करने का प्रयत्न करते है। संग्रह के बारे मे मूलभूत जानकारी जैसे यह वस्तु क्या है? इसे किसने बनाया? यह कब और कहां बनाई गई? इसके बनाने की तकनीक क्या थी? इसे किन लोगो ने इस्तेमाल किया? इत्यादि की नितान्त आवश्यकता पडती है। इस प्रकार की आधारभूत जानकारी के अभाव में संग्रह अर्थहीन हो जाता है तथा उसकी उपयोगिता सीमित हो जाती है। संग्रह मात्र जिज्ञासा की वस्तु मात्र रह जाती है।

संग्रह के बारे में आधारभूत जानकारी को सुनिश्चित पद्वति द्वारा रिकार्ड करने की प्रक्रिया को प्रलेखन अथवा दस्तावेजीकरण कहा जाता है। प्रलेखन द्वारा वस्तु को एक अंक दिया जाता है जो उस वस्तु पर लिख दिया जाता है। यह अंक विभिन्न वस्तुओ की अलग

से पहचान बनाता है तथा विभिन्न दस्तावेजो के साथ उनका संबंध स्थापित करता है। सुव्यवस्थित प्रलेखन उसके मूल ध्येय की पूर्ति को सुचारू रूप से संचालित करने में अति सहायक होता है।

जो निम्नलिखित है–

1. सांस्कृतिक महत्व, प्रदर्शन एवं शिक्षा हेतु संग्रह से संबंधित आधारभूत जानकारी प्राप्त करना। क्योंकि आधारभूत जानकारी के बिना संग्रहित मूर्तियां अर्थहीन हो जाती है। इस कारण संग्रहण के समय तथा तत्पश्चात् शोध द्वारा संग्रह की मूर्तियों के बारे में प्राप्त जानकारी को लिखित रूप से प्रलेखन करना आवश्यक है।
2. संरक्षण की दृष्टि से संग्रह की मूर्तियों का रिकार्ड संग्रहित मूर्तियों का संरक्षण महत्वपूर्ण ध्येय है। इस हेतु मूर्तियों की अवस्था किसी समय विशेष में कैसी है का रिकार्ड तैयार करना। वस्तु की दशा में हुए परिवर्तनों तथा उसे दिये गये उपचार को भी समय समय पर विवरण में सम्मिलित किया जाना।
3. कानूनी अधिकार या मिल्कियत का प्रमाण प्रलेखन के द्वारा मूर्तियों का कानूनी अधिकार प्राप्त होता है। जो भविष्य में चुराये जाने पर उस वस्तु के दस्तावेज के रूप में पुनः प्राप्त करने में सहायता करता है।
4. मूर्तियों के हिसाब की जांच संग्रहित वस्तुओं से प्रायः सरकार द्वारा दिए गए वार्षिक अथवा विशेष अनुदान की राशि का अध्ययन करना है। संग्रह के हिसाब–किताब की जांच पड़ताल दस्तावेजों के आधार पर करना।
5. मूर्तियों की वर्तमान स्थिति तथा स्थिति परिवर्तन का रिकार्ड विभिन्न मूर्तियां किन स्थानों से प्राप्त की गई तथा समय समय पर उसका स्थान परिवर्तन भी हुआ है क्या? यदि मूर्तियां की स्थिति रिकार्ड का सुव्यवस्थित करना, साथ साथ संग्रहित मूर्तियों का सुरक्षा प्रबन्ध का भी अध्ययन किया जाना।[10]

राजस्थान के सांस्कृतिक महत्व में हर्षनाथ की मूर्तियों का महत्वः–

हर्षनाथ की मूर्तियां मनुष्य की आस्था तथा विश्वास की अभिव्यक्ति मात्र ही नही है परन्तु अत्यधिक सम्पन्न, वैविध्यापूर्ण, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि की मूर्त प्रस्तुतियॉ भी है। हिन्दू प्रतिमाओं के सम्मुख उपस्थित दर्शक केवल उसके सौन्दर्यात्मक मूल्यों की ही प्रशंसा नही करता अपितु एक प्रतिक गूढार्थ का अवगाहन भी करता है, जिसमें शताब्दियों का चिन्तन मूर्त हुआ है। हर्षनाथ की मूर्तियां एक पुस्तक के समान है, जिसमें दार्शनिक चिन्तन के आदि रूप की छविया, गूढ तत्वमीमांसा का उत्कर्ष एवं भक्तिपूर्ण रहस्यात्मकता के चरम आनन्द की स्थिति का उत्कर्ष एकत्र सन्निविष्ट होता है जो कि हमे हर्षनाथ की मूर्तियो में परिलक्षित होता है व राजस्थान के सांस्कृतिक महत्व की गाथा को उजागर करता है।

संदर्भ

1. ''एक्सक्वेशन्स एट बसाढ़ '' , आ.स.इ.ए.रि. , 1903–04, चित्र ग्स्ए ग्स्ए पृ. 107 तथा आगे, डे.हि. आई., पृ. 193–194.

2. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, III, अध्याय 82, 7–8.
3. वही, III, अध्याय 82, श्लोक 10,
   ''हस्तीद्वियम विजानीहि शंखपद्मावुभौ निधी''
4. यह मूर्ति पडानगर के नीलकंठ मंदिर (अलवर) के प्रागंण में मंदिरो की भग्न मूर्तियो में पडी है।
5. ओसियां की गजलक्ष्मी प्रतिमा (लगभग 9वीं शताब्दी की), सरदार संग्रहालय, जोधपुर में संरक्षित, प्रदर्शित मूर्ति संख्या 107/12485.
6. आबानेरी से प्राप्त गजलक्ष्मी, आम्बेर संग्रहालय, प्रदर्शित मूर्ति संख्या आबा/14/139.
7. झालरापाटन के सूर्य मंदिर में गजलक्ष्मी की प्रतिमा यथास्थान है। यह शिखर के शकुनासा पर उत्कीर्ण है।
8. नीलिमा वशिष्ठः–राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, रा. हि. ग्र. अ., 2001

डॉ0 कुसुम विन्डवार
व्याख्याता, चित्रकला
ललित कला संस्थान
जबलपुर (म.प्र.)

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# सौन्दर्य एवं कला

भारतीय साहित्य एवं साहित्य शास्त्र में सौन्दर्य का विशेष महत्व रहा है। वैदिक एवं साहित्य–ग्रन्थों में सौन्दर्य शब्द की चर्चा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में होती रही है। ग्रंथों में सौंदर्य को रमणीयता कमनीयता, शोभा, कान्ति, चमत्कार एवं रस आदि नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है। सौन्दर्य शब्द का शब्दिक अर्थ है सुन्दर होने का भाव।

मानव ने कला और सौन्दर्य शब्दों का प्रयोग व्यापक रूप में किया है। कला और सौन्दर्य में मानवता के गुण विश्लेषण का लक्षण पाया जाता है। मानवता का पहला गुण विवेक द्वारा सौन्दर्य को समझना है। सौन्दर्य एक भावना एवं एक मानसिक अवधारणा है, क्योंकि व्यक्ति के बुद्धि वस्तुओं के रूप को विश्लेषण के द्वारा सुन्दर या कुरूप मानती हे।

'रस्किन' के अनुसार ''धर्म, अर्थ और मोक्ष इस त्रिवर्ग का समन्वित रूप ही सौन्दर्य है।

अंग्रेजी में सौन्दर्य के लिये ब्यूटी (Beauty) शब्द का प्रयोग किया जाता है। Beauty शब्द Beau और ty का युग्म है। जिसमें Beau का अर्थ प्रिय रसिकता अथवा श्रृंगारी पुरूष है तथा जल भाव वाचक प्रत्यय है। सौन्दर्य का कार्य इंन्द्रियों को आनंद प्रदान करता है।

सौन्दर्य की परिधि में प्रकृति से लेकर मानव निर्मित पदार्थ तक सभी शामिल होते हैं। जिनके आधार पर इनको दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

(1) प्राकृतिक सौन्दर्य

(2)मानव निर्मित (कृत्रिम) सौन्दर्य

1. प्राकृतिक सौन्दर्य **(Natural Beauty)**

प्रकृति ईश्वरीय कृति है। जिसकी गोद में पलकर मनुष्य बड़ा होता है। प्रकृति ही मनुष्य में सौन्दर्य भावना का विकास करती है। प्राकृतिक सौन्दर्य के भी दो भेद किये गये है।

1. सुन्दर (Beautiful)
2. उदान्त (Lofty)

व्यक्ति जिस वस्तु को देखता है यदि वह वस्तु उसकी ऐन्द्रिक संवेदनाओं को सुन्दर लगती है तब वस्तु के प्रति उसके मन में आकर्षण उत्पन्न होता है, व्यक्ति उसकी समीपता प्राप्त करना चाहता है। जिससे उसे सुख की अनुभूति होती है। यहीं से कला का प्रारम्भ होता है।

प्रकृति में विद्यमान पहाड़, समुद्र, आकाश आदि की विस्तृतता देखकर मनुष्य को अपनी लघुता का आभास होता है। लेकिन मनुष्य इन वस्तुओं के साथ तारतम्य का भाव

जागृत करके एक विशालता और उच्चता का अनुभव करने लगता है, यही उदान्तता (Lofty) की अनुभूति है।

भारतीय परम्परा में प्रकृति सौन्दर्य की देवी है। कलाकार और कवि इसी से प्रेरणा प्राप्त करता है। कला, संगीत, साहित्य का मौतिक सौन्दर्य प्रकृतिगत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही है।

2. कृत्रिक सौन्दर्य **(Artificial Beauty)**

प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रेरणा से ही कृत्रिम सौन्दर्य का विकास होता है। प्रकृति में प्राप्त वस्तुओं का प्रयोग करते हुये मनुष्य विभिन्न प्रकार की सन्दर वस्तुओं का निर्माण करता है। इनमें से कुछ वस्तुऐं हमारी इन्द्रियों को कुछ समय के लिये ही सुख देती हैं तो उन्हें शिल्प कहा जाता है। दूसरी ओर प्रकृति से प्राप्त सामग्री का श्रेष्ठ संयोजन ऐसे रूपों में किया जाता है जो कलात्मक दृष्टि से अभिव्यंजनीयच होते हैं तो वह कला कहलाती है।

कला में अनुभूति (Perception), अभिव्यक्ति (Expression) और रूप (Form) तीनों तत्व विस्तृत रूप में विद्यमान रहते हैं। कला में अभिव्यक्ति को सृजन (Creation) कहा जाता है। प्रकृति की रचनाओं व रंगों से अनुभूति प्राप्त होती है। अमूर्त अनुभूति को मूर्त रूप प्रदान करना कला की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति से रूप बनता है। रूप बाह्य रूप का लावण्य आकर्षक होता है जो सौन्दर्य को जन्म देता है उसी को कलात्मक सौन्दर्य कहा जाता है।

भारतीय कला में सौन्दर्य को कला का प्राण माना गया है और सौन्दर्य को परमानन्द कहा गया है। कला और सौन्दर्य का हमेशा सहचरी का संबंध रहा है। जिस कलाकृति में सौन्दर्य नहीं उसको कला के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। कलाकार के सौन्दर्यमयी सृजन को ही कला माना गया है। इस प्रकार कला में रूप, भोग (Pleasure) और अभिव्यक्ति सौन्दर्य के कारक हैं तथा ओज, मार्धुय और प्रसाद ये तीनों

अभिव्यक्ति के गुण है। मार्धुय का संबंध सुखानुभूति से है और मानसिक दीप्ति (Brilliancy), ओज के द्वारा उत्पन्न होती है, इस प्रकार सौन्दर्य का सृजन संभव माना गया है। लेकिन विस्तृत संदर्भ में कलात्मक सौन्दर्य को सफल भावात्मक अभिव्यक्ति के नाम से ही जाना जाता है। कला का चेतन माध्यम स्वयं कलाकार ही होता है। इसलिए कलात्मक कार्य विषय–वस्तु, आंतारिक चेतना और कलाकार के व्यक्तित्व का एक मिश्रित गुण होता है। जिसमें रूप, भोग और अभिव्यक्ति की अनुभूति ही सौन्दर्य आनंद है।

कला और सौन्दर्य के संदर्भ में भारतीय विचारकों ने विभिन्न ग्रंथों में उसके सृजन पक्ष का वर्णन करते हुये कला के सौन्दर्य पक्ष पर अप्रत्यक्ष रूप से अपने विचार प्रकट किये है। वात्स्यायन के कामसूत्र में सौन्दर्य सृजन के लिए छः अंग आवश्यक माने गये है –

रूप भेदः प्रमाणानि भाव लावण्य योजनम्।
सादृश्यं वार्णिकाभंग इति चित्र षडंगकम्।।

रूप – आकृति प्रमाण – मान एवं अनुपात के अनुसार बनावट, भाव – आकृति की भाव भंगिमा, लावण्य – रूप निर्मित में सौन्दर्य का समावेश, सादृश्य–भूल वस्तु से समानता, वार्णिका भंग – विभिन्न वर्गों का व्यवस्थित संयोजन।

संदर्भ


- अशोक; कला सौदर्य और समीक्षा शास्त्र, ललित कला प्रकाशन, अलीगढ (उ.प्र.)
- ममता चतुर्वेदी; सौंदर्य शास्त्र , रा.हि.ग्र.अ., जयपुर, 2007
- के.सी. पाण्डेय; कम्पेरेटिव ऐस्थेटिक्स, वॉल्यूम 1/11, बनारस, 1950

डॉ0 शकुन्तला महावर
विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग
वैदिक पी.जी. कन्या महाविद्यालय,
मानसरोवर, जयपुर

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# मुगल लघु चित्रों के हाशियों में विषय-वस्तु व चित्रकला के त□व

परिचय - भारतीय ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह माना जाता है कि मुगल साम्राज्य की स्थापना की साथ ही मुगल कलाओं ने भी भारत में प्रवेश किया। उस समय इस पर पूर्णत: ईरानी प्रभाव था। कालान्तर में यह माना जाने लगा है कि मुगल कला का अपना पृथक् अस्तित्व होते हुए भी यह ईरानी प्रभाव से पूर्णतया मु□त तो नहीं हुई है, लेकिन फिर भी पूर्ण भारतीय बन गई है।

मुगल कला का जन्म भारतीय एवं ईरानी कला शैली के सम्मिश्रण से हुआ। जब 'बाबर' क्भ्ख्-ई. में भारत आया तो बहिजाद नामक कलाकार को साथ लाया। यह प्रसिद्ध ईरानी चित्रकार था इसके साथ ही ईरानी त□वों का प्रवेश भारतीय चित्रकला में हुआ। भारतीय वातावरण में हिन्दू व ईरानी चित्रकारों के सहयोग से चित्रकला का जो नवीन स्वरूप सामने आया वही मुगल कला कहलायी। अकबर ने भारतीय ईरानी चित्रकला की जिस शैली का सूत्रपात किया, वह कुछ दिनों बाद ही खत्म हो गई। वस्तुत: यह शैली भारतीय शैली बन गई। मुगल चित्रकला का सूक्ष्म अध्ययन करे तो पता चलता है कि किस प्रकार भारतीय चित्रकला ने अपना सिक्का जमा लिया।[क]

मुगल साम्राज्य का संस्थापक 'बाबर' कलानुरागी कवि, उच्चाकांक्षी प्रौढ़ गद्य लेखक था। इसका वर्णन उसकी आत्मकथा तुजुके-ए-बाबरी (बाबरनामा) जो तुर्की भाषा में लिखी है, पता चलता है। यह अपने शासनकाल में इतना व्यस्त रहा कि चित्रकला के विकास में विशेष योगदान न दे सका, फिर भी उसने अनेक चित्रकारों को संरक्षण तथा राजाश्र्य प्रदान किया तथा जिस चित्र शैली की नींव डाली वह एशिया की सांस्कृतिक उपलि□धयों में एक प्रतिष्ठित स्थान पाने में सक्षम रही।

बाबर की मृत्यु के बाद 'हुमायूँ' उ□राधिकारी बना। यह पिता के समान साहित्य तथा कला प्रेमी था। कला की अभिरूचि विरासत में मिली थी। पिता की भांति इनका जीवन भी शासन स्थापित करने हेतु कठिनाईयों में बीता।[ख] शासन की उथल-पुथल के कारण जब हुमाँयू ईरान में आश्रय लेने गया, तब वापस काबुल आया, तो तब्रेज में ' वाज़ा अ□दुल रसमद शिराजी' और 'मीर सैयद अली' से उनकी भेंट हुई। दिल्ली में अपना शासन मजबूत करने के बाद

इन दोनों को स मानपूर्वक भारत में आमंत्रित कर दरबारी चित्रकार नियु त किया।[4] इन दोनों कलाकारों ने ईरानी शैली को भारतीय शैली में ढालकर चित्रकला के क्षेत्र में नवीन स भावनाओं को जन्म दिया।[5] हुमायूँ के स बन्ध में विद्वानों का कहना है कि वह इतना अधिक कला प्रेमी शासक था कि युद्ध के समय अपने साथ चित्रकारों व पोथियों को रखता था। फुरसत के क्षणों में या अवसर मिलते ही वह तुरन्त चित्र बनवाता था। समकालीन लेखक जौहर के अनुसार जब हुमाँयू अमर कोट में ठहरा हुआ था, तो उसके खेमे में एक सुन्दर फा ता आ गई उसने तुरन्त खेमे के दरवाजे बन्द कर दिये तथा चित्रकारों से चित्र बनवाकर तुरन्त मु त कर दिया। 'अकबर' के दरबार में वाजा अबदुल रसमद व मीर सैयद अली दोनों ही मु य चित्रकार रहे, चित्रकला का वास्तविक विकास अकबर के समय से दिखाई देने लग गया। वह स्वयं अच्छा चित्रकार व कला प्रेमी था। आईने-ए-अकबरी में अबुल फज़ल ने लिखा है कि अकबर ने कई चित्रशालाएँ स्थापित की जिसमें सौ से अधिक उच्च कोटी के हिन्दू-मुस्लिम सभी वर्ग व जातियों के चित्रकार कार्यरत थे।[6] कला को बढ़ावा देने हेतु अकबर चित्रकारों को ऊँचे स मानों व पदों से स मानित कर वेतन भी बढ़ाता था। अकबर चित्रकला को अध्ययन व मनोरंजन का माध्यम मानते थे। इस दृष्टि से यह कला उन्नत होती रही। अकबर द्वारा चित्रकला को मह व देने का दूसरा कारण यह भी था कि वे, इस कला के माध्यम से मृत को सजीव तथा सजीव को अमर बना देना चाहते थे। अबुल फज़ल ने लिखा है कि अकबर के समय मेँ ईरानी और भारतीय चित्रकारों ने मिलकर इतनी उच्च कोटि की चित्र रचना की, कि जड़ पदार्थों में भी जीवन प्रतीत होता था।[7] 'पर्सी ब्राऊन' के अनुसार प्रारि भक अवस्था में मुगल चित्रशैली पूर्ण रूप से विदेशी थी परन्तु जैसे-जैसे मुगल सम्राट, भारतीय वातावरण में ढलते गये वैसे-वैसे चित्रशैली पूर्ण रूप से भारतीय होती गई। आईने-ए-अकबरी में उल्लेख है कि सम्राट की रुचि व्या त चित्रण में अधिक होने के कारण वे स्वयं चित्र बनवाने के लिए बैठते थे। उन्होंने राज्य के तमाम उच्च पदाधिकारियों, उच्चवर्गों तथा अमीरों के शबीह बनाने के आदेश दिये। इन सभी आकृतियों में एक विशेष प्रकार की गतिशीलता दिखाई देती है।[8]

अकबर ने जिस चित्रशैली की आधारशिला रखी थी, वह उसके पश्चात् 'जहाँगीर' काल में प्रौढ़ता को प्राप्त हुई।[9] पर्सी ब्राऊन के श दों में बाबर की विशेष कलात्मक चेतना, जहाँगीर के हृदय में सश त रूप में पुनर्जागृत हुई जान पड़ती है।[10] जहाँगीर की कला में रुचि प्रार भ से ही थी। भारत में यद्यपि मुगल शैली का शुभार भ अकबर के शासन में हुआ किन्तु जहाँगीर के काल में उच्च कलात्मक अध्यायों और नये विकास त वों का समावेश हुआ। समीक्षकों का उसके स बन्ध में कहना था कि वह सुरुचि स पन्न पहले दरजे का चित्रप्रेमी-प्रकृति सौन्दर्य उपासक, विज्ञानी, संग्रहक ार्ा, विशद वर्णनकार, जिज्ञासु और प्रज्ञावादी था। उसकी साधना इतनी परिप व थी कि वह एक ही रंग रूप से तैयार एक मुखाकृति जो अनेक कलाकारों द्वारा

मिलकर अलग-अलग आँख, नाक, कान और होंठ चित्रित किये गये हैं तो वह पहचान सकता था कि किस चित्रकार ने आँख बनाई व किसने भौहें। इस कथन से यह प्रमाणित होता है कि जहाँगीर कितना बड़ा सूक्ष्मदर्शी कलामर्मज्ञ व कला पारखी था, इस कारण जहाँगीर के काल को 'चित्रकला का स्वर्णकाल' के नाम से भी जाना जाता है।[क्ष] शासन की डोर जहाँगीर के बाद 'शाहजहाँ' ने स भाली किन्तु कला का स्वरूप बदल गया। इसकी रुचि चित्रकला में न होकर वास्तुकला में रही। वह चित्रकला की और कम ही ध्यान देता था। इस समय के चित्रों में सफाई, साज-सज्जा पर अधिक कार्य हुआ। तूलिका में कहीं भी कमजोरी प्रकट नहीं होती। फिर भी चित्र दरबारी अदब के पाश में जकड़े मिलते हैं।[क्ष] इसके शासनकाल के दौरान इसके बेटे 'औरंगजेब' ने इसे बन्दी बनाकर शासक की बागडोर अपने हाथ में थाम ली। औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी, धर्मान्ध और रूढ़िवादी था। स□ा स भालते ही कलाओं का वैभव खत्म होने लगा। चित्रकला की उन्नति भी रुक गई। यह स्वयं से स बन्धित ही यदा-कदा चित्र बनवाने लगा था। इसके युवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के चित्र प्राप्त हैं। सत्रहवीं शता□दी के उ□ारार्द्धकाल तक के कई मुगल चित्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि चित्रण कार्य औरंगजेब के समय तक छुट-पुट रूप में चलता रहा था।[क्ष] इससे यह स्पष्ट होता है कि चित्रकला औरंगजेब के काल में मरणासन्न तक पहुँच गई।

'पर्सी ब्राऊन' के अनुसार जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् मुगल चित्रकला भी चल बसी। इसका ब्राह्य रूप तो स्वर्ण तथा सुन्दर वस्तुओं में कुछ दिनों के लिए रहा, आगे के राजाओं के अधीन भी यह रही, किन्तु इसकी आत्मा जहाँगीर के साथ ही मर चुकी थी।[क्ष] अर्थात् जिस चित्र शैली का बीजारोपण मुगल बादशाह बाबर ने किया उसको हूमाँयु ने सींचकर अंकुरित किया। अकबर के समय यह चित्रशैली पौधा बन अपनी शाखाएँ फैलाने लगी, जो जहाँगीर के समय पेड पर कपोले फूट, फल व फूल देने लगे। शाहजहाँ की रुचि चित्रकला में न होने के कारण इस पेड़ में दीमक लग गई जो औरंगजेब के समय धराशाही हो धीरे-धीरे सूख गई। पूर्व अर्जित धरोहर सर्वथा तहस-नहस हो गई।

हाशिया

हाशिया का अर्थ - मुगल लघु चित्रों के चारों ओर किनारों पर एक आलेखन यु□त, अलंकरणात्मक या साधारण पट्टिका का निर्माण किया है, जो हाशिया के नाम से जानी गई है। मुगलकाल में चित्रों के किनारे बने हाशियों की चौड़ाई क सेंटीमीटर से लेकर क्ब सेंटीमीटर तक की होती है।[क्ष] हाशियों को चित्र के चारों ओर बनाने से चित्र अधिक सौन्दर्यपूर्ण एवं आकर्षक प्रतीत होने लगता है। मुगल लघु चित्रों में हाशिये बनाने का मु य उद्देश्य सौन्दर्य की पूर्ति का सबसे सर्वश्रेष्ठ साधन था। इन पर विभिन्न प्रकार से अलंकरण, पशु-पक्षी, वनस्पति, ज्यामितीय आकृतियाँ, फूल-पा□ायों को बनाकर अलंकारिक उद्देश्य की पूर्ति की जाती थी।

मुगल कलाकारों ने आलेखनों को सौन्दर्य के साथ उपयोगिता पूर्ण भी बनाया। प्रत्येक वस्तु स्वयं में आकर्षण को समाहित किये रहती है तथा यह आकर्षण वस्तु की उपयोगिता, बनावट व सजावट पर निर्धारित होती है।

अलंकारिक साज-सज्जा से पूर्ण हाशियें के अंकन के पीछे मुगल शासकों द्वारा कलाकरों का सदैव कलात्मक प्रतिभा व अनुभूति को प्रोत्साहन प्रदान करने का उद्देश्य रहा है। हाशियों के माध्यम से चित्र की सीमाओं में सौन्दर्य वृद्धि तो होती है, साथ ही चित्र की अवधि, विस्तार व कीमत भी बढ़ जाती है। (चित्र-क)

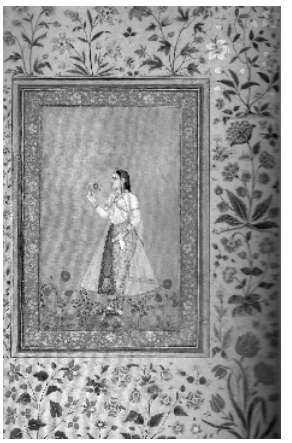

चित्र-क
फूल पा□यों यु□त हाशिया

पर्सी ब्राऊन' का कथन सत्य है कि मुगल चित्रशैली में हाशियों का मु य चित्र से इतना स बन्ध था कि जहाँगीर के काल में कोई भी चित्र जब तक पूर्ण नहीं माना जाता था जब तक की इसके उत्कृष्ट रूप से सुसज्जित हाशियों से आवृ□ा न किया गया हो, जो आगे चलकर चित्रकला का एक विशिष्ट लक्षण बन गया। चित्र के चारों ओर हाशियें व लेख सज्जा फारसी कला की देन है। मुगलकला के सन्दर्भ में[क्क] 'लुबर हेजेक' का कथन है कि मुगल चित्रशैली में हाशिया साज-सज्जा का प्रयोजन पाण्डुलिपि एवं व्यक्ति चित्रों में मूलत: भिन्न है, □योंकि हाशिए-चित्रण की प्रवृ□ा पूर्ण रूप से सज्जायु□त है।[क्क] हाशियों में, साज-सज्जा का प्रचलन क्ख्वीं शता□दी की फारसी कला में उपल□ध होते हैं तथा इसका पूर्ण विकसित स्वरूप चौदहवीं शता□दी की तबरेज की कला में दृष्टिगोचर होता है। हाशिया सज्जा की यह प्रवृ□ा हिरात, तिमूरिया व सफेविद कला केन्द्र में पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शता□दी में निरन्तर अध्ययन रही।[क्ख]

'ल्यूबर हेजेक', की दृष्टि में हाशियें साज-सज्जा सत्रहवीं शता□दी की मुगल कला की विशेष उपल□धी है।[क्ग] अबुल फजल ने आईने-ए-अकबरी में उल्लेखित किया है कि चित्रशाला में कलाकारों के अतिरि□त, साज-सज्जा तथा अलंकरण कार्य में विशिष्ट व्यक्ति ही सेवारत थे। कला विशेषज्ञ पर्सी ब्राऊन ने चित्ररीति के इस क्षेत्र में मुगल चित्रकारों की उपलि□ध को सर्वोपरि कहा।[क्घ] इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि अलंकरणात्मक हाशियों को मुगल चित्रशाला में कला की एक विशिष्ट शाखा के रूप में स्थान प्राप्त है। शाहजहाँ को पुष्पों के प्रति विशेष रूचि होने के कारण भिन्न-भिन्न रूपों में संयोजित कर चौखटों पर फूलों के साथ पक्षियों को भी चित्रित किया। उद्यानों का मुगलों के दैनिक जीवन में मह□वपूर्ण स्थान था। इसमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों- चिनार, आम, जामुन, अनार आदि को स्थान दिया है। पुष्पित

फूल व पौधों में काल्पनिक व वास्तविक रूपों का संयोजन किया, इनमें कमल, लिली, वाटर लिली सूरजमुखी, डेफोडिल्स, गुलाब, पिंक जीनिया आदि के साथ कांटेदार, सीधी, चापाकार, त्रिशुलाकार पा□ायों का प्रयोग बीच-बीच में किया। राजाज्ञा मानते हुए 'मंसूर' जो कि जहाँगीर कालीन चित्रकार था ने सौ से अधिक फूलों की जातियों को संरक्षित कर चित्रों में स्थान दिया।[छ]

चित्र-ख
पक्षी यु□त हाशिया

सभी मुगल शासक वनस्पति के समान ही पशु-पक्षियों से प्रेम करते थे, इसी कारण हाशियों में, इन्हें भी मु य स्थान मिला।(चित्र-ख) हाथी, चीता, लोमड़ी, चील (बाज), बगुला को चीनी अजगर की विशेषताओं के साथ हाशियों में अंकन किया। एक हाशियें के प्राकृतिक दृश्य में सिंह, हिरण, खरगोश तथा पक्षियों को तो चित्रित किया ही गया है, साथ-साथ अनेक काल्पनिक पशुओं को भी अंकित किया गया है। इनके अतिरि□त मानवाकृतियों को दैनिक कार्य करते हुए भी दर्शाया गया है। एक हाशियें में तो होली के उत्सव को ही चित्रित कर दिया गया है।[ज]

अकबर के काल में हाशिया की साज-सज्जा का विकास अधिक न होकर जहाँगीर के समय में अधिक उन्नत हुआ है। इस समय यह हाशियें स्वयं अपने में एक कला है। इन हाशियों को अत्यधिक सुसज्जित करने के पीछे यह कारण मु य रूप से रहा, की कलाकार स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करके अपनी कला क्षमता को प्रदर्शित कर सके।[झ]

जहाँगीर के समय हाशिया-सज्जा में पश्चात्य चित्र विषयों का समावेश भी मिलता है, पाश्चात्य उ□ाकीर्ण चित्रों की अनुकृतियों को संयोजित किया गया। जहाँगीर काल में युरोपियन प्रभाव संपूर्ण चित्रकला पर पड़ा। अत: हाशियों पर भी इनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

विषय

जहाँ तक हाशियों में अंकन के विषय रहे है वह शासकों से ही जुड़े थे। यह शासकों व दरबारी वर्ग आदि के आमोद-प्रमोद की इच्छा पूर्ति करते थे। मुगल कलाकारों ने हाशियों में निर्जीव, सजीव व जीवन उपयोगी वस्तुओं का उचित मात्रा में समावेश कर इन्हें विशेष स्थान प्रदान किया।

'चाल्स इलियट' के अनुसार मानवीय तथा प्राकृतिक दोनों ही प्रकार के आलेखनों में कलाकार ने प्राकृतिक दृश्य चित्रण के माध्यम से आनन्द, शा□त, रहस्य विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया। मुगल चित्रकारों द्वारा स मेविद चित्र शैली के प्रभाव के फलस्वरूप रेखांकित लाइनों के बीच में खाली जगह पर फूल व पा□ायों द्वारा अलंकरणात्मक प्राकृतिक

आकारों की बेले, लयबद्ध नमूनों के द्वारा सजाई गई। इन केन्द्रों में हाशिया-पट्टियों को सामान्य रूप में सुनहले रंग में अलंकृत बेलबूटों द्वारा सज्जित किया गया है। उदाहरण 'बहारिस्तान' (दिनांकित क्ष-ध--ख्र बाडलियन लाइब्रेरी, आ□सफोर्ड) तथा 'बाबरनामा' रचनाकाल (क्म्, ब्रिटिश यूजियम एण्ड लाईब्रेरी में अलंकृत हशियें आलेखन है।

चित्रकला के त□व - चित्रकला जीवन की अभिव्यक्ति है। प्रागैतिहासिक काल से ही मानव किसी न किसी धरातल पर अपनी भावनाओं को अंकित करता रहा है। जिसके माध्यम से ही कला की उन्नति निरन्तर होती रही। चित्रकला द्वारा जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करके उसे सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया। यही कारण है कि आज सभी कौशल और कौतुहलों की गणना कला में होने लगी है। प्रत्येक काल की कला में आलेखन के त□व एवं सिद्धान्त सदैव विद्यमान रहे हैं यह त□व चेतन व ज्ञान को बल देने के साथ ही कलाकार की भावनाओं व विचारों को व्यक्त करने के लिये दृष्टिगत त□वों का प्रयोग कर, सौन्दर्यमयी अनुभवात्मक ज्ञान को रूप प्रदान कर पाने में सफल हो जाता है। □योंकि "The element is the base of paint used for painting"[ख्ब] यदि त□वों का संयोजन बिखर गया तो चित्र उ□ाम नहीं बनेगा चाहे विषय कितना ही आकर्षक □यों न हो।

सभी युगों की कलाओं में वही मूल त□वों को परिलक्षित किया है जिन्हें विद्वानों ने भारतीय कला के लिये निश्चि□ा किये। कलाकार सौन्दर्य की आवश्यकताओं एवं शैली के अनुसार ही इन त□वों को साज-सज्जा (विषय) में प्रयोग करता है। ये त□व नि न हैं- रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत व अन्तराल।

मुगलकालीन कलाकारों को ये समस्त त□व विरासत स्वरूप ईरान तथा भारत की प्राचीन कला से प्राप्त हुए हैं। यह भी सत्य है कि यह त□व स्वतन्त्र रूप से चित्र का निर्माण नहीं कर सकते। सदैव एक से अधिक त□वों के द्वारा ही सौन्दर्य पूर्ण चित्र का संयोजन कर पाते हैं। 'वाचस्पति गैरोला' के अनुसार- आनन्दानुभूति या सौन्दर्योत्कर्ष के लिए चित्र में रेखा, रंग, आकृति, भाव इन सबका ऐसा संयोजन होना चाहिए कि वे एक दूसरे से उत्कर्ष को व्यक्त करे। यही संगीत है और इसका चित्रकला में वही स्थान है जो संगीत में लय और वादक में गति का है।[ख्ज] ऐसे अनेक रूपाकार जो रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत, अन्तराल में भिन्न होने पर भी व्यवाहारिक रूप से निकट होते हैं, जिन्हें देखकर दूसरी वस्तु का स्मरण हो आता है। ऐसे रूपाकार जो परस्पर उपयोग की दृष्टि से एक दूसरे से स बद्ध न होने पर भी साथ में बार-बार प्रयु□त करने से सामंजस्य उत्पन्न करते हैं। विभिन्न रेखाओं की आवृ□ा व रंगों को धूमिल करके पृष्ठभूमि का प्रयोग कर मुगल कलाकारों ने सामंजस्यपूर्ण चित्रण किया है। सन्तुलन कला सृजन का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार चित्रण के सभी त□व इस प्रकार व्यवस्थित हो कि उनका भार समस्त चित्र तल पर समूचित रूप से वितरित रहे।[ख्क] रचना के किसी एक पक्ष में ही

नहीं अपितु रचना में प्रयुक्त सभी त□वों के सामग्री समायोजन में पूर्ण सा यावस्था ही सन्तुलन है।[प] मुगलकालीन कलाकारों ने सन्तुलन को ध्यान में रखकर चित्रण किया है, जिससे सज्जा (आलेखन) असंतुलित नहीं हो पाये। अकबरकालीन लघु चित्रों के संयोजन अपने अभुतपूर्व सन्तुलन, निश्चत भार संयोजन के लिए जाने जाते हैं।[फ] हाशियों में समान आकार सज्जा द्वारा में निश्चल तथा गति का भाव उत्पन्न होता है।

तत्कालीन कलाकारों ने अधिकांशत: हाशियों के चारों ओर से बराबर न रखकर केवल तीनों ओर से ही उनकी चौड़ाई बराबर रखी है। चौथा भाग उसका आधा रखा है फिर भी यह असंतुलित प्रतीत नहीं होते। मुगल चित्रकारों ने चित्र की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रतिमानों का प्रयोग किया है। रूप, रेखा, वर्ण, तान आदि त□वों को भिन्नता से स्थानत्व का प्रयोग कर आवश्यकतानुसार आकारों को चित्रित किया है, □योंकि मनोवैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् यह ज्ञात हुआ है कि मानव चित्रकार ने इन श्रेष्ठ त□वों का समावेश कर चित्र को सर्वश्रेष्ठ बनाया है।

संदर्भ


1. के.एम. नजिम्कर; भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण, पृ. 176
2. हरमन गोयट्ज; आर्ट ऑफ दी वर्ल्ड (इण्डिया), न्यूयॉक, 1959, पृ. 210
3. सर.जी बर्डबुड; इन्डस्ट्रीयल आर्टस ऑफ इण्डिया, लंदन, 1880, पृ. 18
4. लोरेन्स बिनयन; एशियाटिक आर्ट्स, स्कल्पचर एवं पेंटिग, पृ. 121
5. पर्सी ब्राऊन; इण्डियन पेंटिग, कोलक□ा, 1947, पृ. 49
6. पर्सी ब्राऊन; इण्डियन पेंटिग, कोलक□ा, 1947, पृ. 89
7. एच.के.शेरवानी; कल्चर सिन्थेसिस इन मिडिवल इण्डिया, जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ. 49
8. एडवर्डस एण्ड गैरेट; मुगल रूल इन इण्डिया, पृ. 324
9. पर्सी ब्राऊन; इण्डियन पेंटिग, कोलक□ा, 1947, पृ. 50
10. तुजुक-ए-जहाँगीरी (अन.ए.राजर्स, सम्पादन, एच.बेवरिज) द्वितीय खण्ड, पृ. 20-21
11. रायकृष्ण दास; भारत की चित्रकला, वाराणसी, 1939, पृ. 156
12. कांक एवं आर्चर, पृ. 92-104, फलक पृ. 407, 418
13. पर्सी ब्राऊन; इण्डियन पेंटिग, कोलक□ा, पृ. 89
14. एस.पी.वर्मा; एन इलस्ट्रेटिड मैन्यूस्क्रिप्ट ऑफ दी दीवाने हाफिज ऑफ अकर्बस कोर्ट इन दी कलै□शन ऑफ बली अहद, रामपुर, रूपलेखा, वॉल्यूम 50, पृ. 11
15. पर्सी ब्राऊन; इण्डियन पेंटिग अण्डर द मुगल्स, (1550-1750) आ□सफोर्ड, 1924, पृ. 91
16. ल्यूबर हेजेक; इण्डियन मिनियचर्स ऑफ दी मुगल स्कूल, लन्दन, 1960, पृ. 37
17. ई. कुहनेल एवं एच.गोयट्स; इण्डियन बुक पेंटिंग, लन्दन 1926, पृ. 45

18. ल्यूबर हेजेक; इण्डियन मिनियचर्स ऑफ दी मुगल स्कूल, लन्दन 1960, पृ. 13
19. पर्सी ब्राऊन; इण्डियन पेंटिग अण्डर द मुगल्स, (1550-1750) आ□सफोर्ड, 1924, पृ. 139
20. कुमार सरस्वती; बर्डस इन मुगल आर्ट, मार्ग, वॉल्यूम-2, नं. 2
21. डॉगलेस बैरेट एवं बेसिल ग्रे; पेन्टिग ऑफ इंडिया, □वीलैण्ड, 1973, पृ. 101
22. ल्यूबर हेजेक; इण्डियन मिनियचर्स ऑफ दी मुगल स्कूल, लन्दन 1960, पृ. 37
23. बैरेट एवं ग्रे; पेन्टिंग ऑफ इण्डिया, □वीलैण्ड, 1953, पृ. 102
24. अशोक कुमार दास; मुगल पेन्टिंग डयूरिंग जहाँगीर्स टाइम, कोलक□ाा, 1978, पृ. 185-186
25. एस.पी.वर्मा; एन इलस्ट्रेटिड अकबरनामा ऑफ सेविनटीथ सेन्चुरी मुगल स्कूल, पृ. 52, रूपलेखा, वॉल्यूम-51
26. कुमार सरस्वती; बर्डस इन मुगल आर्ट, मार्ग वॉल्यूम-2
27. डि□शनरी ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स, सम्पादक जॉन एल, स्टाउटेनबर्ग

श्रुति जैन
शोधार्थिनी
दी आईआईएस यूनिवर्सिटी, जयपुर

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# मुगल कला के अकबर और जहाँगीरकालीन लघु चित्रों में पशु - पक्षी चित्रण

मुगल कला शैली बाबर के राज्यकाल में (1526 ई.- 30ई.) ईरान से आकर भारत में प्रविष्ट हुई। हुमायूँ के समय में इसका बीजारोपण हुआ, अकबर के राज्य में यह फली फूली, जहाँगीर के समय में यह अपनी पराकाष्टा की विकसित अवस्था को प्राप्त हुई, शाहजहाँ के समय इसमें पतन के चिन्ह प्रकट होने लगे तथा औरंगजेब के समय में यह प्रायः समाप्त होने लगी। मुग़ल कला के चित्रकार कुछ पटना, कुछ दक्षिण और कुछ भारत की उ□ार की पहाडियों पर जाकर अपना जिविकोपार्जन करने लगे।[1]

यह शैली ईरान से भारत में आई थी इसलिए ईरानी प्रभाव देखने को मिलता है। मुग़ल चित्रकला भारतीय, फारसी तथा इस्लाम का मिला जुला रूप है। मुग़ल बादशाहों ने अपनी-अपनी रूचि के अनुसार कला को आगे बढ़ाया। मुग़ल कला से कला जगत में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। इस काल के चित्रों में सफाई और बारीकी देखने को मिलती है। ये कला 250 साल चली और फिर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रारंभ में समाप्त हो गई। बाबर का पुत्र हुमायूँ अपनी कल्पनाओं को चित्रकारों द्वारा चित्र का रूप देता था। वह युद्ध यात्राओं के दौरान सचित्र पुस्तकें रखता था। रास्ते में पक्षियों को देखकर वहाँ के वहीं उनका चित्रण करवाता था। इससे उसका कला के प्रति कितना प्रेम था यह ज्ञात होता है। अकबर को भी बचपन से ही चित्रकला में रूचि थी। उसने विभिन्न विषयों पर चित्रण करवाया जिन मे पशु-पक्षी प्रमुख थे। जहाँगीर के समय तक चित्रकला पराकाष्ठता तक पहुँच गई । उसका सबसे प्रिय विषय पक्षी चित्रण था। युद्ध यात्रओं के दौरान वह चित्रकारों को साथ रखा करता था और रास्ते में रुककर पक्षियों के चित्र बनवाया करता था। उसके शासन काल में पशु-पक्षियों का चित्रण सर्वाधिक हुआ। शारीरिक अंकन, अलंकरण, केशसज्जा, वस्त्राभूषण सभी में सूक्ष्मता के साथ अंकन हुआ है। इसी समय चित्रों के साथ हस्त लिखित पुस्तकें भी सौन्दर्य और कला की दृष्टि से जानी गई। लिखित पृष्टों के चारों ओर हाशियों का प्रचलन था। उन हाशियों में चित्रण किया जाता था। इसी कारण ये पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध हुई। जहाँगीर के बाद शाहजहाँ ने भारत के शासन कि बागडोर संभाली। किन्तु शाहजहाँ के काल में मुग़ल चित्रकला का रूप बदल गया। उसकी व्यक्तिगत रूचि चित्रकला में नहीं बल्कि स्थापत्य कला में थी। फिर भी उसने उन सांस्कृतिक परम्पराओं से छेड छाड नहीं की, जिनकी स्थापना उसके पितामह ने की थी। चित्रकार निरंतर मुग़ल दरबार में आश्रय पाते रहे और चित्रकला पलती रही। चित्रकला का उद्देश्य अब मुग़ल सल्तनत के वैभव का प्रदर्शन मात्र रह गया था। शाहजहाँ

के काल में चित्रों की सजावट अपनी परिप□वता की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी, किन्तु इस अवस्था के बाद पतन स्वभाविक था। औरंगजेब का शासन काल मुग़ल चित्रकला के पतन का इतिहास है। उसके हाथों में शासनाधिकार आते ही इस क्षेत्र की रही सही खूबियाँ भी सर्वथा जाती रही। उसने चित्रकला का प्रबल विरोध किया। इस काल में चित्रकारों को किसी प्रकार का राजकीय प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ। अत: इस काल में चित्रकला का पतन हुआ।

पशु – पक्षी चित्रण

अकबर और जहाँगीर के काल में पशु – पक्षी चित्रण सर्वाधिक हुए है। वे शिकार, फूल तथा पशु–पक्षियों के विषय में बहुत रूचि लेते थे। 'उस्ताद मंसूर' ने जहाँगीर के लिए पशु–पक्षियों के अनेक चित्र बनाये। उसके द्वारा बनाया 'टेर्की कॉक' तथा 'बाज' का चित्र संसार प्रसिद्ध है। उसके चित्रों में नक्काशी जैसा काम होता था इसी से वे अपने आपको 'मंसूर नक्काश' कहते थे।[2]

जहाँगीर, चित्रकला का इतना कुशल पारखी था कि वह अपने आत्मचरित में लिखता है – 'हमारे लिए चित्रकला की ओर रूचि और चित्रों के गुण–दोष विवेचन कि शक्ति इतनी बढ़ गई है कि जब कोई कलाकृति – चाहे मृत चित्रकारों की हो या वर्तमान की हो, हमारे सामने बिना कलाकार का नाम बताये उपस्थित की जाती तो हम तुरंत बतला देते की अमुक कलाकार की कृति है। और यदि एक ही चित्र में कई शबीहे होती और प्रत्येक भिन्न कलाकार की होती तो भी हम प्रत्येक का पता लगा लेते कि कौन किसकी है। यदि एक ही मुख पर किसी अन्य व्यक्ति का नेत्र तथा भों बनाया होता तब भी हम कह देते कि किसने मुख बनाया है और किसने नेत्र तथा भों।' जब सम्राट की अभिरुचि की यह स्थिति हो तो राजतंत्रीय समाज व्यवस्था में सम्बंधित कला का चरम विकास स्वभाविक ही है।[3]

जहाँगीर अपने खास चित्रकारों से ऐसी चीजें ढूंढ़ के लाने को कहता था जो के अनदेखी हो, आश्चर्यजनक हो और लोगो के लिए अनजानी हो फिर उनका चित्रण करवाते थे। उसमें एक उदाहरण है 'तुर्की कॉक'[4] (चित्र–1)

चित्र–1, तुर्की कॉक

इस चित्र में पृष्ठभूमि सादा है जिससे मुख्य आकृति पर ही दर्शक का ध्यान जाता है। चित्रकार कॉक को ही विशेष रूप से दिखाना चाहता है इसलिय उसे इतना बड़ा दिखाया है की सम्पूर्ण चित्रतल पर वही दिखाई देता है। नीचे की ओर हल्के रंग में कुछ फूल पि□यां बनाई

है। कॉक को गहरे रंग में दिखाया है, लाल रंग की चोंच है तथा पीछे का भाग काले रंग में है। कॉक के पंखों में पारदर्शिता साफ़ दिखाई देती है।

अकबर के काल में 'ख्वाजा अबदुल रसमद' ने हाथियों का विस्तार से अध्ययन तथा चित्रण किया है, उनका रखरखाव, भोजन, प्रशिक्षण, कर्मचारियों द्वारा उन पर अत्याचार, अकबर का उनके प्रति प्रेम, इन सब को चित्रों के मध्य से दिखाया गया है।

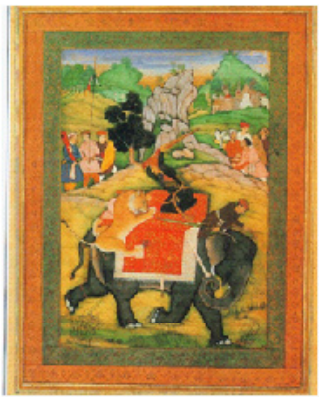

चित्र–2, सम्राट सलीम शेर द्वारा अचंभित

चित्र –2 सम्राट सलीम शेर द्वारा अचंभित हो हाथी की पीठ पर बैठा है, शेर हाथी की पीठ पर चढ़ गया है।[5] सम्राट के हाथों में लाठी है उससे वह शेर पर वार कर रहा है। इस चित्र का संयोजन बहुत ही आकर्षक है। यहाँ चमकदार रंगों का प्रयोग किया गया है। सम्राट और शेर को मुख्य रूप से दिखाया है शेष आकृतियों को गोण रखा है। पृष्ठभूमि में हरे व पीले रंग की अधिकता है। हांशियों में बारीकी से फूल एवं पि□ायों का अंकन किया है। हांशियों से चित्र का आकर्षण और भी बढ़ गया है। मुग़ल कला में हांशिये इतने अलंकृत है, जिससे ज्ञात होता है कि वे नक्काशों द्वारा बनवाकर चित्रकारों द्वारा ही तैयार किये गए है। उन पर बेल–बूटे, शिकारगाह, बीच–बीच में पशु–पक्षी तथा ऐसे दृश्य, जिनका सम्बन्ध चित्र से हो अथवा न हो, बने है। इनमे अलंकरण इतना है कि कही–कही पर तो ये प्रधान चित्र से भी उत्कृष्ट हो गए है। सुनहरी रंगों की भरमार से हाशियों का अलंकरण चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर गया है। सम्राटों ने बहुत से चित्र बनवाए जिनके हाशियों में पशु पक्षियों का बहुत विस्तार से अंकन करवाया।

चित्र-3, बाज

चित्र-3, 'बाज़' जहाँगीर के काल में बना चित्र है। इसमें बाज़ की आकृति को इतनी सजीवता के साथ बनाया गया है कि उसके आन्तरिक भाव भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। नेत्रों के भाव देखते ही बनते है। आंखों में □रूरता और चोंच के तीखेपन सहित भीतरी विवरण कलाकार के उत्सुक स्वभाव को दिखाता है। सादी पृष्ठभूमि के विपरीत पक्षी का बारीकी से अध्ययन किया गया है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।[6]

चित्र-4, भागता हुआ तेंदुआ

चित्र-4, में 'तेंदुआ आयताकार आयाम को तोड़ते हुए बहार भागता हुआ दिखाया है।' इससे इसकी गतिशीलता का आभास होता है। इस चित्र से कलाकार की नई सोच दिखती है की उसने तेंदुए की गतिशीलता को दिखाने के लिए चित्र में नया प्रयोग किया जो पहले नहीं किया गया था। पीछे की और एक स्त्री और उसके दो बेटे चित्रित है। उनके चहरे पर भी आश्चर्य के भाव स्पष्ट दिखाई देते है।[7]

मुग़ल चित्रों में गैंडा, घोडा, मेढा, शेर, ऊंट, मृग, बकरे, जेबरा, जिराफ आदि अनोखे पशुओं का चित्रण भी चित्रों में मिलता है। जहाँगीर को पक्षियों का अत्यधिक शोक था। उनके राज्यकाल में पशुओ के साथ-साथ पक्षियों का चित्रण भी अत्यधिक हुआ। मोर, मोरनी, सुनहेरा कबूतर, शिकरा, कक्कुआ, पीलू, तुर्की, तीतर, बुलबुल, कोयल, सारस, बतख, मुर्ग, बटेर, आदि है। इस प्रकार पशु-पक्षिओं की रचना में बारीकियों का इतना सफल एवं स्पष्ट प्रदर्शन है कि चित्र में निरुपित पशु-पक्षिओं की जाति, उपजाति, कि पहचान में समस्या नहीं आती।[8]

मुग़ल चित्रकला का जन्म, उत्थान एवं पतन मुग़ल साम्राज्य के जन्म उत्थान एवं पतन के साथ सन्निहित है। कुछ समय पूर्व मुग़ल कला को ईरानी चित्रकारी की एक शैली मात्र कहा जाता था, जो स्थानीय विभिन्नता के कारण उत्पन्न हो गई थी परन्तु अब यह माना जाने लगा है कि मुग़ल कला का अपना पृथक अस्तित्व है और वह ईरानी प्रभाव से मुक्त न होकर भी पूर्ण भारतीय है।

संदर्भ

1. आर. एन. टंडन; भारतीय चित्रकला की रूपरेखा, भारत भारती प्रकाशन, मेरठ, 1962
2. आर. ए. अग्रवाल; भारतीय चित्रकला का विवेचन, इंटरनेशनल पि□लशिंग हाऊस, मेरठ, 2005
3. शशिप्रभा प्रसाद, रीतिकालीन भारतीय समाज; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

श्रीमति राजेश कुमारी
व्या याता चित्रकला,
महाराजा सूरजमल इन्स्टीट्यूट,
नई दिल्ली

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# स्वर्गीय डॉ0 सुमहेन्द्र का कला संसार - एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन (श्रद्धांजलि)

कला मानव जीवन का दर्पण है जहाँ सामाजिक यथार्थ का जीवन्त प्रतिबि ब दर्शित होता है। यू भी कला मानव संस्कृति का वह अविभाजित अंग है जो मानव मन को परिमार्जित, परिष्कृत एवं पवित्र बनाता है।

भारत की कला एवं संस्कृति भी व्यापक एवं मानवीय रही है। यहाँ के मु□त वातावरण में अनेकों साम्राज्यों के उत्थान-पतन होते रहे हैं। यहाँ अनेक नस्ले, कबीले एवं जातियाँ आती रही एवं बसती रही। उनके साथ उनकी संस्कृति, लोक-मान्यताएँ एवं विश्वास भी पले बढ़े। बाहरी संघातों से वे अछूती रही। परिणाम स्वरूप भारत की कला पर परा सदा ही समृद्ध रही।[क]

भारतीय कला 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' से ओत-प्रोत है। अपनी अर्न्तआत्मा की प्रेरणा से भारतीय कलाकारों ने अपनी कृतियों का निर्माण किया जिनमें उनकी समर्पण की भावना व दक्षता दर्शित है।

इसी प्रकार राजस्थान के कला परिवेश का यदि अवलोकन किया जाये तो हम पायेंगे कि यह प्रांत ही एक ऐसा प्रांत है जो अपनी कला, स यता एवं संस्कृति की उत्कृष्टता एवं समृद्धता के लिये विश्ववि यात रहा है। यहाँ की कला शैलियों (मेवाड़, मारवाड़, हाडौति एवं ढूंढार) एवं कलाकारों ने राजस्थान को न केवल भारत में अपितु स पूर्ण विश्व में विशिष्ट पहचान दिलवाई है। राजस्थान में आधुनिक कला को पार परिक कला से जोड़ने में अनेक कलाकार प्रयासरत रहे हैं। (शैल चोयल, दीपिका हाजरा, सुरजीत चोयल, अशोक हाजरा, वीरबाला भावसार इत्यादि) किन्तु इनमें डॉ. सुमहेन्द्र भी अपना अहम् स्थान रखते रहे हैं, चित्रकला, मूर्तिकला एवं लेखनकला में दक्षता रखते हुए आपने अपनी कला से राजस्थान को गौरवान्वित किया है।[ख]

महेन्द्र कुमार शर्मा (सुमहेन्द्र) का जन्म क जुलाई क-ब्फ ई. को राजस्थान प्रदेश के जयपुर जिले के नायन (अमरसर) नामक स्थान पर हुआ। इन्होंने महावीर दिग बर जैन उच्च प्राथमिक विद्यालय से आठवीं कक्षा उ□ीर्ण की। इसके पश्चात् महावीर दिग बर जैन माध्यमिक विद्यालय सी-स्कीम से नौवी कक्षा में प्रवेश लिया। सन् क-म्ब में राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, किशनपोल बाजार, जयपुर से चित्रकला अतिरि□त विषय लेकर बी.ए. किया। स्वर्गीय कलाविद् रामगोपाल विजयवर्गीय से लघुचित्रण शैली में प्रशिक्षण लिया। सन् क-म्त्र में श्री टी.पी.मिश्रा

और श्री लल्लू नारायण से मूर्तिकला विषय में प्रशिक्षण लेकर डिप्लोमा प्राप्त किया। सन् क-म्त में (फ्रेस्को शिविर) वनस्थली विद्यापीठ से फेस्को तकनीक में विधिवत प्रशिक्षण प्राप्त किया। सन् क-स्त्र में दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर से चित्रकला में एम.ए. (स्नातको□ार की उपाधि) किया[प] और सन् क-त्त्ब में राजस्थान के रागमाला चित्रों पर पी.एचडी की उपाधि राजस्थान विश्वविद्यालय से प्राप्त की। इसके साथ-साथ पुराने लघु चित्रों के खराब होने पर उन्हें पुनर्जीवन प्रदान करने में भी उन्हें दक्षता प्राप्त थी।

सुमहेन्द्र का कला संसार अनूठा था, वे किसी पर परा में बंधकर नहीं चले यही कारण था कि उनकी चित्राकृतियों में आधुनिकता एवं पर परा का अद्‌भुत संगम दिखलाई पड़ता है। राजस्थान की किशनगढ़ लघु चित्रशैली सुमहेन्द्र को विशेष प्रिय रही है और यही कारण है कि उनके चित्रों की आकृतियों में किशनगढ़शैली का पुट दिखलाई पड़ता है।

सुमहेन्द्र के कला संसार पर विस्तार से चर्चा करना मेरे द्वारा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करना होगा। हाल ही में उनसे मुलाकात और उनके सृजनात्मक पहलू पर विस्तार से अध्ययन सुमहेन्द्र द्वारा निर्मित प्रमुख चित्रों के विषयों का □यौरा नि नलिखित है- उनके द्वारा बनाये सैकड़ों चित्रों में 'व्यि□त चित्र'; 'प्रेम एवं वासना विषयक चित्र'; 'ऐतिहासिक चित्र'; 'धार्मिक चित्र'; 'नारी उत्पीडन पर आधारित चित्र'; 'व्यंग्य चित्र'; 'प्रकृति चित्र' एवं 'सामाजिक चित्र' हैं।

सुमहेन्द्र ने अनेकों 'व्यक्ति चित्रो' को चित्रित किया जो भाव निरुपण की दृष्टि से अति उ□ाम हैं। आपने सेल्फ प्रोट्रेट व अपने माता-पिता, किसान व महिलाओं इत्यादि के व्यक्ति चित्र टे परा पद्धति में चित्रित किए। 'प्रेम एवं वासना' विषयक चित्रों में 'युगल श्रृंखला', 'इवनिंग श्रृंखला' व 'लोनली श्रृंखला' का निर्माण किया। 'इवनिंग श्रृंखला' को सुमहेन्द्र ने टे परा और तैलरंग में चित्रित किया। यहाँ नायिका को सामजिक बंधनों से पीडित दर्शाया है। प्रेम रोग से ग्रस्त, प्रतीक्षारत, चन्द्रमा पर, प्रेमी, स्वप्निल, तारे इत्यादि उनके अन्य प्रमुख चित्र हैं।

'लोनली श्रृंखला' (क-त्त) में प्रेम संबंधों की परिणति टे परा पद्धति से निरूपित की है। लोनली नाईट्स, लोनली फैमेली, लोनली फैन्ड्स (क-त्त) (चित्र-क) में मिलन के आनन्द को दर्शाया है। 'युगल श्रृंखला' के चित्र टे परा और एक्रलिक रंग में चित्रि हैं। आपने भारतीय इतिहास से प्रेरित हो अनेक ऐतिहासिक चित्र श्रृंखलाओं की रचना की जिनमें महाराणा प्रताप (क-स्त्रम)[ब]; औरंगजेब (ख्स्त्र); शिवाजी प्रमुख हैं।

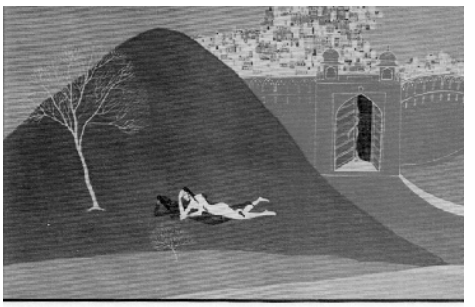
चित्र-क, लोलनी फ्रेन्डस्-क-त्त

'महाराणा प्रताप श्रृंखला' के चित्रों को सुमहेन्द्र ने वॉश और टे परा तकनीक में चित्रित किया है। प्रमुख चित्रों में 'अमरसिंह चेतक के साथ खेलते हुये', 'चेतक को दुलारते हुए',

'हल्दीघाटी', 'भाला साफ करते हुये' और 'अकबर को संधि पत्र लिखते हुये हैं।' 'औरंगजेब श्रृंखला' में औरंगजेब के शासन में व्याप्त अत्याचारों को बखूबी टे परा व जल रंग से चित्रित किया है।

धार्मिक चित्रों में 'रामायण चित्र शृंखला' (क–म–) जिसके अन्तर्गत पुरुषो□ाम राम के जीवन के विभिन्न पक्षों को चित्रांकित किया है। इनमें 'राम–रावण युद्ध' शीर्षक चित्र प्रमुख है। इसके अतिरि□त कालीदास द्वारा रचित ग्रन्थ 'मालविकाग्निमित्रम्' के विभिन्न अंकों के श्लोकों पर आधारित चित्र क––भ से क––त्त तक चित्रित किये। यहाँ नायक, नायिकाओं के विभिन्न क्रियाकलापों, अठखेलियों, वियोग, श्रृंगार आदि दृष्टान्तों को चित्रित किया है।

'नारी उत्पीडन' पर आधारित चित्रों को क––म से क––त्त तक चित्रित किया। इनमें सती श्रृंखला, शेखावटी श्रृंखला, डिजायर (इच्छा) श्रृंखला प्रमुख है। आग, लक्ष्मी, बालिका, नग्नाकृति, डरी हुई नायिका, क्रोधित बालिका आदि प्रमुख विषयक चित्र है जिन्हें टे परा और तैल रंग में चित्रित किया है।

चित्र-ख लेडी विद् लोटस्-क––त्त

'नायिका' आधारित चित्रों में सुमहेन्द्र ने नायिका के विविध रूपों को 'बारहमासा श्रृंखला' (ख्भ) में, एवं क––ब से क––त्त में चित्रित 'लेडी विद लोटस' श्रृंखला में संजोया है। बारहमासा चित्रों में बारहमासों में विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों के बीच नायिका को प्रेम, अवसाद, वैराग्य, विरह, संयोग–वियोग को टे परा तकनीक में दर्शित किया है। लेडी विद्..... में नायिका को प्रकृति बीच सामंजस्य स्थापित कर कोयल, कौआ, तोता, मोर, सर्प, हिरण, बंदर, घोड़ा, कमल और खंजर के साथ टे परा, वॉश, एक्रलिक एवं तैल रंगों में चित्रित किया। इस प्रकार प्राकृतिक परिवेश के बीच प्रेम, रोमांच, विरह, राग इत्यादि भावों की सश□त प्रस्तुति की है। (चित्र–ख)

'व्यंग्य चित्रों' के अन्तर्गत सुमहेन्द्र ने हास्यरस यु□त व्यंग्यात्मक शैली के चित्रों को भी चित्रित किया है। सन् क–ख्खई. में टे परा तकनीक से बनाये। 'सुमहेन्द्र विद् पिकासो श्रृंखला' में आपने अपने जीवन के अनेक पक्षों को पिकासो के साथ संजोया है। श्रृंखला के एक चित्र में सुमहेन्द्र ने पिकासो को अपने साथ गांव के खेत में पेड़ के नीचे बाजरे की रोटी, छाछ और मिर्ची खाते दर्शित किया है। अन्य व्यंग्य चित्रों में क्रिटिक, ऐश ट्रे, पोलिटिशियन इत्यादि है।

आपके द्वारा चित्रित 'प्रकृति चित्रों' में भी प्रकृति के प्रति अगाढ़ प्रेम दर्शित होता है। प्रकृति विषयक चित्रों में 'दृश्य चित्र श्रृंखला' (ख्क) व क–ख्ख से क–ख्फ में 'ड्राई लावर

श्रृंखला' प्रमुख है। दृश्य चित्रों में जयपुर के विहंगम दृश्यों को तैल रंगों में संयोजित किया है। सफेद लिली, लाल पर्वत प्रमुख चित्र हैं।

सामाजिक चित्रों में गाडिया लुहार श्रृंखला (क-म) टे परा पद्धति में चित्रित है। गाडिया लुहारों के क्रियाकलापों, वेशभूषा इत्यादि का आपने यथार्थ चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त भिखारी, प्रात:कालीन कतार, हनुमान पुजारी इत्यादि चित्र भी प्रशंसनीय है।

सभी चित्रों का अवलोकन करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि सुमहेन्द्र के अधिकांश चित्रों की पृष्ठभूमि में मंद रंगों का प्रयोग हुआ है। आपने खनिज रंगों जैसे गेरू, रामरज, हिरमिच, खडिया एवं कहीं-कहीं सोने-चाँदी का भी प्रयोग किया है। लाल, पीला, नीला, हरा, काला, सफेद सभी रंगों का प्रयोग किया है इनमें लाल रंग आपका सर्वाधिक प्रिय रंग रहा है।[ब] वे पर परावादी कलाकार होते हुये भी प्रयोगवादी अधिक रहे। उनके चित्रों में आकृतियाँ बड़ी है जो अभिव्यंजना की दृष्टि से मु□तक चित्रों की श्रेणी में आती है और छंदो का प्रभाव लिये हुये है।[स]

चित्रों के साथ-साथ सुमहेन्द्र का रुझान मूर्तिशिल्पों को तराशने में भी रहा। व्या□त शिल्पों, व्यंग्य शिल्पों, सिरेमिक टाइल्स श्रृंखला, फीगर (आकृति) श्रृंखला आदि शिल्पों का निर्माण आपने किया।

चित्र-फ, माई फादर-ख्ख

बोन्ज (कांसा) से निर्मित शिल्प में प्लेयर यूथ, 'फाइबर ग्लास' से 'माई फादर'(चित्र-फ) 'कास्ट स्टोन' से 'रवीन्द्र नाथ टैगोर' की मूर्ति (रवीन्द्र मंच पर स्थापित) 'स्वामी विवेकानन्द' व 'पंडित जवाहरलाल नेहरू' की मूर्ति (अमरसर, जयपुर में) और 'न्यायदेवी की मूर्ति' (सत्र न्यायालय, जयपुर में) प्लास्टर ऑफ पेरिस में निर्मित 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' की मूर्ति (दूरदर्शन केन्द्र, जयपुर) में देखी जा सकती है। इन मूर्तियों के गठन में सुमहेन्द्र ने उनके चारित्रिक गुणों को सफलतापूर्वक दर्शाया है। ख्ख से ख्भ के बीच निर्मित 'फीगर श्रृंखला' में नग्न स्त्रियों और पुरुषों के विकृत चेहरे यु□त धड़ निर्मित किये हैं जिन्हें देखने से उन पर अत्याचार की विभीषिका दिखाई देती है। इस प्रकार सुमहेन्द्र ने कल्पना, समसामयिक घटनाओं पर एवं सामाजिक समस्याओं को लेकर मूर्तिशिल्प तराशे हैं। जिनके चेहरे विकृत और कुरुप है जिनमें क्षतिग्रस्त आँखें, होंठ, पिचकी नाक तो किसी मूर्ति के आँखे व नाक न के बराबर है। यही कारण है कि उनके शिल्पों में पिकासो की झलक के साथ-साथ, अमेरिकी पाउलो, रोर्बट मूलर व फांस के शिल्पी रोर्बट जे कोवसन शिल्पकारों

की झलक एवं प्रभाव दिखाई देता है।

उपरो□त कार्यों के अतिरि□त डॉ0 सुमहेन्द्र एक अच्छे लेखक भी साबित हुये। उनके द्वारा लिखित पुस्तकों में 'राजस्थानी रागमाला चित्र पर परा' जयपुर, क--, 'रागमाला पेंटिंग ऑफ राजस्थान' जयपुर, क-त, 'मिनियेचर पेंटिंग तकनीक', जयपुर, क-त्त्र और 'स्प्लेनडिड स्टाइल ऑफ किशनगढ़ पेंटिंग', जयपुर क--क हैं। इसके अलावा आपने 'कलावृ□ा शोध पत्रिका' का भी नियमित प्रकाशन किया। जिससे शोधार्थी वर्तमान तक लाभान्वित होते रहे हैं।

यह लेख उनको श्रद्धांजलि स्वरूप प्रस्तुत है।

संदर्भ

1. रघुवंश, जायसी, एक नई दृष्टि, इलाहाबाद, 1993, पृ. 24-25
2. राव कनकसिंह, धरोहर, जयपुर, 2008, पृ. 176
3. हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 19 अ□टूबर 1970, पृ. 3
4. नवभारत टाइम्स, मुम्बई, 18 सितम्बर, 1976, पृ. 9
5. राष्ट्रदूत, सुमहेन्द्र की एक और कला यात्रा, जयपुर, 6 फरवरी 1972, पृ. 7
6. कैटलॉग, जहांगीर आर्ट गैलरी, मुम्बई, अगस्त 1974

डॉ. श्रीकृष्ण यादव
प्राचार्य, आर्य कॉलेज
सिंघाना, झुंझनू

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# शेखावाटी क्षेत्र के लघु मन्दिर व परम् धामों का कलात्मक अध्ययन (चित्रकला की दृष्टि से)

भारत में प्राचीन काल से ही चित्र संरचना के प्रति लोगों के मन में रुचि थी। चित्र रचना के अनेकों प्रसंग साहित्य में मिलते हैं। कालिदास के 'मेघदूत' में यक्ष द्वारा अपनी स्त्री का चित्र बनाने का उल्लेख एवं भवनों में विविध रंगीय चित्र प्रसाधनों की चर्चा आती है। 'मृच्छकटिक नाटक' में चित्र भिा के सं लन्न होने का उल्लेख आता है।[3] इनके अतिरि त 'समराइच्चकहा' (त्वीं शती), 'कुवलयमाला' (ख्रत्त्त ई.) में चित्र पट्टों के उल्लेख मिलते हैं।[4] मध्यकाल में प्रतिहार कालीन चित्रशैली के अनेक चित्र प्राप्त होते हैं। प्रतिहारों के पश्चात् ग्रन्थ चित्रण प्रमुख हो गया। ग्रन्थों के ऊपर लगने वाली काष्टपट्टिका भी चित्रित की जाने लगी थी। इस समय चित्रकला के क्षेत्र में एक नई विधा का प्रवेश हुआ जिसके मु य त व सवा चश्मी चेहरा, बर्हिनिसृत चक्षु, त्रिभंग, मुद्रा आदि थे। इस शैली का जन्म दक्षिण में हुआ था।[5] अपभ्रंश शैली के चित्र शैलीगत मौलिकता के प्रतीक थे।

मुगलों के आगमन के पश्चात् इस देश में एक नई चित्र शैली का विकास हुआ। यह शैली लघु चित्रण की थी। राजपूत शैली का उद्भव मध्यकाल में हुआ। यह पश्चिमी भारतीय चित्र शैली एवं मुगल शैली के समन्वय के उद्भूत हुई।[6]

राजस्थान की स यता एवं संस्कृति को गौरवान्वित करने में 'राजस्थानी चित्रकला' का मह वपूर्ण योगदान रहा है। कोटा जिले के 'आलणियाँ', 'दर्रा', 'बैराठ', 'आहड़' तथा 'भरतपुर' जिले के दर नामक स्थानों के शैलाश्रयों में आदिम मानव द्वारा उकेरे गए रेखांकन और मृण्भाण्ड़ों की कलात्मक उकेरियाँ इस प्रदेश की प्रारं भक चित्रण पर परा को उद्घाटित करती है।[7] राजस्थानी चित्रशैलियों का भारतीय चित्रकला के इतिहास में एक अद्वितीय स्थान है। भारतीय चित्रकला को जो समृद्धि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मिली है, वह राजस्थानी चित्रकला के कारण ही स भव हुई है। राजस्थानी चित्रों में हमें भारत की उस शास्त्रीय पद्धति के दर्शन होते हैं, जिनमें दृष्टि विज्ञान व सौन्दर्य निरीक्षण का बड़ा ही मार्मिक विश्लेषण हुआ है।

राजस्थानी चित्रकला के नामकरण पर विद्वानों के द्वारा अलग-अलग मत दिए जाते हैं। कुछ विद्वान इसे राजपूत कला, तो कुछ विद्वान इसे हिन्दू शैली कहते हैं। राजस्थानी चित्रकला

का सबसे प्रथम वैज्ञानिक विभाजन, आनन्द कुमार स्वामी ने अपनी पुस्तक 'राजपूत पेंटिंग' में सन् क–क्क ई. में किया था।[ङ] उनके अनुसार राजपूत चित्रकला का विषय राजपूताना तथा पंजाब की पहाड़ी रियासतों से स बन्धित है तथा इन रियासतों के अधिकारी प्रमुखत: राजपूत राजा होने के कारण इसे राजपूत चित्रकला कहा जाना उचित है।

इस राजस्थानी शैली के विकास के केन्द्रों में कोटा, बूंदी, जयपुर, अलवर, किशनगढ़, मेवाड़ आदि क्षेत्र प्रमुख थे। इन समस्त छोटे–बड़े राज्यों में राजपूत शासकों का शासन था, अत: इसी आधार पर 'कुमारस्वामी', 'ओ.सी.गांगुली', 'ई.बी.हैवल' व 'बेसिल ग्रे' आदि विद्वानों ने इस चित्रकला शैली को 'राजपूत चित्रकला' कहा है। इस अवधारणा के विपरीत 'रायकृष्णदासजी' ने मात्र शासक जाति के आधार पर इस शैली को राजपूत कला मानने के विचार का खण्डन किया है और इसे 'राजस्थानी चित्रकला' का नाम दिया है।[ख]

राजपूत शैली अथवा राजस्थानी चित्रशैली के विकास का प्रार भ सोलहवीं शता□दी का उ□रार्द्ध माना जाता है। वैसे राजस्थानी शैली का विकास मुगल शैली के समकालीन भी माना जाता है। राजस्थानी शैली पर मुगल और ईरानी दोनों ही शैलियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। राजस्थानी शैली के स बन्ध में 'कुमारस्वामी' ने कहा है कि 'राजपूत शैली संसार की सुन्दरतम् चित्र शैलियों में से एक है। वास्तव में इन चित्रों का विषय जन हृदय और काव्य के सराबोर है।'[च]

पन्द्रहवीं शता□दी से हिन्दू धर्म में भ□ित का प्रभाव बढ़ने लगा था और प्रेम तथा भ□ितभाव से आनन्दित जीवन उल्लास से ओतप्रोत दिखाई देने लगा था। इससे प्रभावित होकर चित्रकारों ने देवी–देवताओं की विभिन्न लीलाओं के रोचक चित्र बनाने प्रार भ कर दिए। राधा और कृष्णा को नायक–नायिका बनाकर मानव जीवन को प्रतिबि बत करने के लिए उनके दैवीय कृत्यों को प्रदर्शित किया जाने लगा। कृष्णलीला चित्रों के साथ–साथ श्रृंगार, ऋतुओं और नायिका–भेद के चित्रों पर भी अत्यधित ध्यान दिया जाने लगा। चित्रकला में नृत्य एवं अभिनय समावेश होने के कारण राजस्थानी चित्रों में मनोहर भाव–भंगिमाओं एवं आकर्षक मुद्राओं का अंकन होने लगा। साहित्य के नव–रसों की भाँति चित्रकला में भी इन रसों का होना पाया जाने लगा।[छ]

प्राचीन शिल्पशास्त्रों, धर्मो□रपुराणों तथा संस्कृति साहित्यों में चित्रकला के अनेक उल्लेख मिलते हैं, जिनसे कला–विधान के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इनमें सबसे मह□वपूर्ण 'विष्णुधर्मो□र पुराण' है। विष्णुधर्मो□र पुराण के तृतीय खण्ड के एक भाग 'चित्रसूत्रम्' से प्राचीन भारतीय चित्रकला का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसके बाद कई ग्रन्थों जैसे 'अभिलाषितार्थ चिंतामणि', 'शिल्परत्न' और 'समरांगणसूत्रधार' आदि में भी मु यत: विष्णुधर्मो□र पुराण का चित्रसूत्र ही है। अजंता आदि के चित्रों से प्रमाणित होता है कि चित्रसूत्र कोरा शास्त्र नहीं था, बल्कि उसके सिद्धान्तों एवं विधानों की पूर्ण रूप से

पालना की जाती थी।[क]

'चित्रसूत्रम्' के अनुसार चित्र चार प्रकार के होते हैं, 'सत्य', 'वैणिक', 'नागर' तथा 'मिश्र'। जो चित्र उचित प्रमाण तथा भूमिका के समान मनोहर हो, जिनमें धरती के पदार्थों के समान वास्तविकता हो व वैसी ही कोमन भावनाओं की प्रतीती हो, वे चित्र सत्य है। जो चित्र शरीर के अंगों का आनुपातिक निर्माण करते हों, सुडौल व परिपूर्ण हों, आधार एवं प्रमाण से यु□त हों, वे 'वैणिक चित्र' कहलाते हैं जो चित्र मनोहारी रेखाओं वाले हों, जिनके सभी अंग पुष्ट व सुदृढ़ हों तथा जिनमें अलंकार की अधिकता न हो, वे 'नागर चित्र' कहलाते हैं। 'मिश्र चित्रों' में इन तीनों ही शैलियों का मिश्रण पाया जाता है।

चित्रसूत्रम् के अनुसार जिस चित्र के स्थान, प्रमाण व आधार उचित अनुपात में हो, अंगों में कोमलता व मधुरता हो, वास्तविक वस्तु की समानता हो, वह चित्र सुन्दर माना जाता है। चित्रसूत्रम् में चित्रकारों को बाकायदा आदेश दिए गए हैं कि वे किन नियमों के तहत चित्रों का निर्माण करें। जैसे देवताओं, नागों, किन्नरों और यक्षों का रूप सौ य तथा राक्षसों का रूप भीषण होना चाहिए। उनके केश उठे हुए तथा आँखें तनी हुई होनी चाहिए। इसी प्रकार योद्धाओं को सैनिक वस्त्रों में और शस्त्रों में सजे हुए होना चाहिए। गायक तथा नर्तकों का वेष उद्धृत होना चाहिए। नदी-देवताओं को हाथ में पूर्ण कु भ लिए हुए वाहनों पर दिखाना चाहिए। समुद्र को हाथ में रत्न का पात्र लिए हुए बनाना चाहिए तथा उसके ज्योतिमंडल के स्थान पर पानी अंकित करना चाहिए।[क]

प्रमुख भारतीय चित्रकारों द्वारा चित्र निर्माण में इन शास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन किया गया है। मंदिरों की दीवारों पर धार्मिक आ यानों से स बन्धित कथाचित्रों का ही चित्रण किया गया है। दरबारी दृश्यों तथा भोग-विलास के दृश्यों का चित्रण मंदिरों में नहीं पाया जाता है, ऐसा चित्रण महलों, छतरियों तथा हवेलियों में ही पाया जाता है।

प्राचीनकाल से राजस्थानी चित्रकला बड़ी प्रसिद्ध रही है। राजस्थान में चित्रकला का साम्राज्य न केवल सन्तों की हवेलियों, राजप्रसादों, छतरियों, लघु निजी आवासगृहों बल्कि मंदिरों इत्यादि में भी मिलता है। ये चित्र भि□ायों, छतों, चौक, द्वार इत्यादि स्थानों पर बने होते हैं। इनमें देवी-देवताओं, राग-रागनियों, सामाजिक जीवन से स बन्धित क्रिया-कलापों, प्रेम-प्रसंगों इत्यादि से स बन्धित चित्रों की प्रमुखता पाई जाती है।

राजस्थानी चित्रकला की शैलियों की दृष्टि से मु यत: चार शैलियों में बाँटा जा सकता है। ये चार शैलियाँ क्रमश: मेवाड़ शैली, मारवाड़ शैली, हाडौती शैली तथा ढूंढाड शैली की कई उपशैलियाँ यथा आमेर शैली, जयपुर शैली, शेखावाटी शैली, अलवर शैली, उनियारा शैली आदि हैं।[ख] इन शैलियों में जो चित्र चित्रित किए गए हैं, उनमें रामायण-महाभारत की कथाओं, राग-रागनियों, नायक-नायिकाओं के भेद व उनकी प्रेम लीलाओं का प्रमुखता से

चित्रण किया गया है। यूं तो भिि।ा चित्रों के उल्लेख प्राचीन काल से मिलते हैं। कागज के अभाव, काष्ट फलकों के छोटे होने और उनके नष्ट होने के डर से अधिकांश चित्र दीवारों पर चित्रित होने लगे।

सर्वेक्षण के आधार पर शेखावाटी क्षेत्र में सबसे प्राचीन चित्र क्स्त्रब्–क्स्त्रभ् ई. के मध्य 'गोपीनाथजी के मंदिर', परसरामपुरा व 'कल्याणजी का मंदिर' झुंझनू में है।

ठाकुर शार्दुलसिंहजी ने क्स्त्रब्ब् ई. में परसरामपुरा में गोपीनाथजी का मंदिर बनवाया था जिसमें अनेक चित्र मिलते हैं। इन चित्रों का निर्माण शार्दुलसिंह की छतरी के चित्रों के साथ किया गया है। रामायण के विभिन्न प्रसंगों पर आधारित चित्रों में राम–रावण युद्ध, अयोध्या लौटते हुए श्रीराम को रथ में सीताजी एवं लक्ष्मणजी के साथ अंकित किया गया है।

रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक, शेष शैय्या पर विष्णु तथा लक्ष्मीजी, वराह अवतार, लक्ष्मी, दुर्गा तथा श्रवणकुमार, परियाँ, दौड़ती गायें, हिरण, मयूर, हाथी, घोड़े आदि का भी चित्रण यहाँ के चित्रकारों ने बड़े मनोयोग से किया है। चित्र लोककला के अनुरूप सरलता लिये हैं।

सन् क्त्फ– ई. में ठाकुर शार्दुलसिंहजी ने कल्याणजी का मंदिर भी झुंझनू में बनवाया था। यहाँ पर कुछ आलेखन ही प्राप्त हुये हैं जो कि मंदिर की बाहरी दीवारों पर अंकित है जो अत्यन्त साधारण स्तर के हैं। मंदिर के स मुख एक पुजारी का निवास स्थान है जिसके बरामदे के बाहरी छज्जों पर कुछ चित्र अंकित मिलते हैं। यहाँ केवल दो चित्र ही शेष बचे हैं जो भगवान राम पर आधारित हैं। एक में राम–सीता एवं शूर्पणखां का दृश्य एवं अन्य में हनुमान, राम–सीताजी को चंवर ढुला रहे हैं, पास में लक्ष्मणजी खड़े हैं।

गोपीनाथजी का मंदिर (झुंझनू) का यह वह स्थान है जहाँ पर वर्तमान में गोपीनाथजी का मंदिर है वहाँ पर कभी कायमखानियों के किसी पीर का तकिया था जिसके अहाते में मंदिर बना हुआ है। इस अहाते की दीवार के अन्दरुनी हिस्सों में प्राचीन आलेखनों के अवशेष अवशिष्ट हैं। एक दो पहरेदारों के चित्र हैं जो साधारण कोटि के लोककला के रूप में है। अन्य चित्र रासलीला तथा पंखा एकादशी उत्सव का है। गोपीनाथजी के मंदिर के अहाते में ही एक शिव मंदिर है जिसमें वराह–अवतार का भी चित्र रूप उल्लेखनीय है।

इसी प्रकार क–वीं शती के आरंभिककाल से क–वीं शती के मध्यकाल तक के चित्र श्री गंगामाई मंदिर, नवलगढ़ में चित्रित पाये जाते हैं। नवलगढ़ नगर तथा गढ़ को विक्रम संवत् क्स्त्र–ब माघसुदी सन् क–फ्स्त्र ई. में कुमार नवलसिंहजी ने बसाया था। इस मंदिर का निर्माण सेठ छाछरियाजी ने निर्मित कराया था।

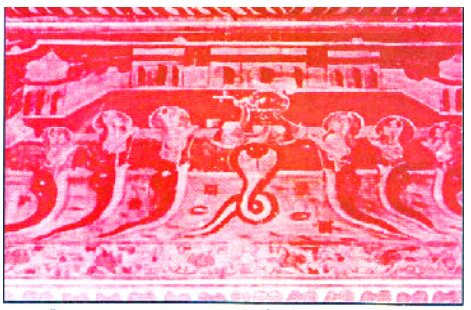

चित्र–क, श्री गंगामाई का मंदिर, नवलगढ़

यह एक भव्य मंदिर है जिसके बाहर तथा अन्दर धार्मिक विषयों का चित्रण हुआ है। यहाँ मंदिर गर्भगृह के बाहर सभाकक्ष की भि□ायों पर भगवान विष्णु के दशावतारों का श्रृंखलाबद्ध चित्र (चित्र-क), रासलीला, राम का जुलूस, अश्वमेघ का घोड़ा तथा श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का चित्रण देखने को मिलता है। दशावतार विषयक चित्र बड़े ल बे पैनल के अन्तर्गत श्रृंखलाबद्ध रूप में अंकित है, जिनमें मत्स्य अवतार, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कलकी अवतारों को विधिवत रूप से अंकित किया है। भगवान राम तथा कृष्ण के विभिन्न लोकप्रिय पक्षों को भी बड़े वर्णनात्मक ढंग से अंकित किया गया है। चित्रों में महलों का समावेश तथा प्राकृतिक दृश्यों का अंकन प्राय: प्रत्येक दृश्य में अंकित है।

मंदिर की एक दीवार पर भगवान राम द्वारा छोड़े गये अश्वमेघ के घोड़े का एक भव्य चित्र यहाँ पर अंकित है जिसके अन्तर्गत सशस्त्र सैनिकों की अपार भीड़ श्री रामजी के साथ अंकित की गई है। श्रीरामजी एक विशाल तीन सूंड वाले हाथी पर एक भव्य ओहदे के अन्तर्गत विराजमान है जिनके साथ हाथियों पर उनके भाई लक्ष्मण, शत्रुघ्न व भरतजी हैं। इनके आगे तथा पीछे घोड़ों पर सवार सैनिक अश्व मेघ के घोड़े के पीछे-पीछे चल रहे हैं। इन सैनिकों ने बड़ी-बड़ी विजय पताका भी धारण की हुई है। ये सभी आकृतियाँ मु य विषय को प्राबल्यता प्रदान करने के लिये छोटे तथा कम आकर्षण वाले बनाये गये हैं। चित्र में अत्यन्त भीड़-भाड़ मु य पात्रोन्मुख है। आवृ□ा संयोजन में निरन्तरता समरूपता तथा अति आच्छादित व्यवस्था होते हुये भी एक कृत्रिम लयात्मकता का बोध है। सन्तुलन के लिये वास्तुशिल्प महक आदि के चित्रित रूप को प्रयु□त किया गया है।

इस प्रकार चित्र एक संगठनात्मक तथा सामंजस्यात्मक प्रवृ□ा का सटीक उदाहरण है। जन-आस्था के लिए बनाये पौराणिक चित्रों को नि न कलाकारों ने संजोया है। इनमें प्रमुख है- श्री भूरुसिंह, श्री मातुराम शर्मा, श्री फूलाराम, श्री गजानन्द वर्मा आदि। इसी मंदिर में कंसवध का चित्रण है जिसमें श्रीकृष्ण ने अपने पराक्रम से कुवलय नामक हाथी को पछाड़ दिया है तथा कंस के पहलवानों को भी धराशायी कर दिया है। इसके उपरान्त वह सिंहासनासीन कंस का अन्त कर रहे हैं। इस दृश्य में दरबारीगण बैठे हुये इस दृश्य को बड़ी उत्सुकता से देख रहे हैं। मंदिर की बाहरी दीवारों पर हाथियों, घोड़ों तथा ऊँटों की विविध चित्र अंकित हैं।

चित्र-ख श्री रघुनाथजी मंदिर (लक्ष्मणगढ़)

नवलगढ़ में ही स्थित 'रघुनाथजी मंदिर' में रामदरबार में लक्ष्मण व हनुमानजी राम के चरणों के पास बैठे दर्शित हैं। (चित्र-ख)

रामगढ़ में स्थित क–वीं सती के उ□ारार्द्धकाल का सागरमलजी खेमका द्वारा निर्मित कराया गया 'शनि देवता का मंदिर' भी भि□ा चित्रकला का एक अनन्य उदाहरण है। इस मंदिर में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का □यौरेवार अंकन उल्लेखनीय है। बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक की प्राय: सभी लीलाओं पर यहाँ चित्रकारों ने सूक्ष्मता से प्रकाश डाला है। श्रृंखला में चीरहरण, दान–लीला तथा कालिया दमन के चित्रों के अतिरिक्त एक राजपूत रमणी अपने पति के रण क्षेत्र में सउल्लास भेज रही है। यह रण क्षेत्र में ले जाने वाले घोड़े को तिलक लगाकर मनौती मनाती है कि वह उसके पति को सकुशल रखें। चित्र में दासी चंवर ढुला रही है तथा दूसरी दासी थाली में पूजा का सामान लिये खड़ी है। चित्र में चार मंजिला राजमहल का अंकन बारीकी से किया गया है। अन्य चित्र में राधा–कृष्ण को झूला–झूलते हुये चित्रित किया है।

सूरजगढ़, चिड़ावा के निकट एक छोटा सा कस्बा है। इस ठिकाने की ठुकरानी का बनवाया गया 'सीतारामजी' का भव्य मंदिर सुन्दर भि□ा चित्रों से सुसज्जित है। इस मंदिर का निर्माणकाल क–वीं शती का उ□ारार्द्धकाल है। मंदिर में रासलीला का अन्य चित्र चित्रित है साथ ही आलेखनों की भरमार है जो बड़ी सूक्ष्मता से अंकित है। राम–विवाह अन्य उल्लेखनीय चित्र है। चित्र में अपार भीड़–भाड़ के साथ राम–लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का सम्मिलित विवाह अंकित है जो गढ़ की सुदृढ़ चार दीवारी में महल के अन्तर्गत सम्पन्न होता हुआ अंकित है। यहीं पर स्थित 'सत्यनारायणजी के मंदिर' में लंकापुरी के अनेक दृश्यों में सीताजी को अशोक वाटिका में झूले पर दिखाया गया है। हनुमानजी भगवान राम की मुद्रिका उन्हें दे रहे हैं।

बिड़लाओं की जन्मभूमि पिलानी है जहाँ एक प्रचीन 'हनुमान मंदिर' स्थित है। इस मंदिर में श्रवणकुमार तथा अशोक वाटिका में सीताजी का चित्र चित्रित है। पिलानी में बिड़ला बंधुओं द्वारा निर्मित 'शारदा मंदिर' भी सरस्वती को समर्पित है। यहाँ पर पौराणिक आख्यानों का चित्रांकन हुआ मिलता है। यहीं पर स्थित 'राम मंदिर' में दुर्गा, (चित्र–फ) भगवान विष्णु, ऋषि मुनि, शिव परिवार, कृष्ण द्वारा अर्जुन को उपदेश आदि का चित्रण मिलता है।

चित्र–फ, राम मंदिर (पिलानी)

श्री श्री क्त श्री श्रद्धा पुरुष 'बाबा रामेश्वर दासजी का विशाल मंदिर' झुंझनू जिले के सीमान्त टीबा बसई में स्थित है। आश्रम भी भि□ा चित्रकला की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बाबा रामेश्वर दास सिद्ध संत और श्रद्धा पुरुष थे। मंदिर परिसर में सभी कक्षों में महाभारत कालीन एवं रामायण पौराणिक संदर्भों के साथ विविध देवी–देवताओं, कर्मज्ञान और ज्योति प्रसंग सचित्र एवं नयनाभिराम रूप में भि□ायों पर अंकित है। सीकर

स्थित 'कृष्ण मंदिर' में गोपियों को कृष्ण भगवान के साथ नृत्य करते हुये दर्शाया है। 'रघुनाथ मंदिर' (सीकर) की बाह्य भि[illegible]ा पर भगवान कृष्ण का बाल्य रूप मु यद्वार के अन्दर वाले झरोखे के ऊपर भगवान कृष्ण को नायक के रूप में प्रस्तुत कर आसपास गोपियों एवं सखाओं का चित्रण किया गया है। 'देवरानी मंदिर' (सीकर) में भगवान कृष्ण को बांसुरी लिये दर्शाया गया है। मंदिर के मु यद्वार पर द्वारपालों के चित्र अंकित हैं। सीकर में स्थित 'गोपीनाथजी मंदिर' में भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं से स बन्धित चित्रों का वर्णन है। (चित्र-ब) मु यद्वार पर दो अप्सरायें स्वागतार्थ उड़ती हुई। आसपास दो महिलायें हाथों में फूल लिये कमल पुष्प पर स्वागतार्थ प्रतीत होती है। बाँये तरफी की दीवार पर भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को सारथी के रूप में चलाते हुये दर्शित हैं जिसमें पाँच घोड़े हैं। दायीं तरफ की दीवार पर भगवान श्रीकृष्ण का रोद्र रूप चित्रित है।

चित्र-ब, गोपीनाथ जी मंदिर (सीकर)

शेखावाटी क्षेत्र के मंदिरों में भि[illegible]ा चित्रण की मु यतः दो पद्धतियाँ पाई जाती हैं, 'फ्रेस्को-[illegible]यूनो' एवं 'फ्रेस्को-सीको'। गीले पलस्तर पर भि[illegible]ा चित्र बनाने तथा रंग भरने की विधि को आलागीला या फ्रेस्को-[illegible]यूनो तकनीक कहा जाता है। इस विधि से बने भि[illegible]ा चित्रों के रंग सतह में बैठ जाते हैं और हजारों वर्षों तक वास्तविक तथा स्थाई बने रहते है, [illegible]योंकि वातावरण में उत्पन्न होने वाली नमी को पलस्तर में प्रयु[illegible]त चूना अपने में सोखकर चित्र के रंगों को स्वतः ही आवरण व सुरक्षा प्रदान करता है। फ्रेस्को-[illegible]यूनो तकनीक में केवल वहीं रंग काम में लाए जा सकते हैं जिन पर क्षार का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये किसी बाइन्डिंग मटीरियल की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी पद्धति के चित्र फ्रेस्को सीको पद्धति के चित्र कहलाते हैं। सीको तकनीक में चित्र निर्माण का कार्य दीवार की सूखी सतह पर किया जाता है। साफ चमकीली दीवार पर पानी में घुलनशील रंगों में चित्र बनाए जाते हैं। इस तकनीक में रंगों का प्रयोग करने के लिए उन्हें बांधने के माध्यम के रूप में कुछ जरूरी घोलों जैसे अंडे की जर्दी, गोंद इत्यादि के साथ मिलाना पड़ता है, जबकि [illegible]यूनो तकनीक में रंगों को बांधने का कार्य चूने का मिश्रण करता है, जो लगाने के बाद दीवार की ऊपरी सतह पर अपने अवशेष छोड़ जाता है।[क्प]

शेखावाटी के मंदिरों में टे परा पद्धति में एवं तेल चित्र भी मिलते हैं। रंग अधिक चटकीले रहे हैं। ऊष्ण और शीतल दोनों तरह के रंगों का प्रयोग किया गया है। प्राकृतिक एवं खनिज दोनों प्रकार के रंगों का प्रयोग भि[illegible]ा चित्रण में किया गया है। हिरमिच, खड़िया, रामरज, नीला, कत्थई, लाल, पीला, काला और कुसूमल रंग है।

शेखावाटी के मंदिरों के भिि।ा चित्र विविध विषयों से स बन्धित है। धार्मिक चित्र मंदिरों में अधिक मिलते हैं। राधाकृष्ण की लीलाओं से स बन्धित चित्र, रामायण, महाभारत की कथाओं से संबंधित चित्र प्रमुखता से चित्रित है। बेल-बूटों का मंदिर के बाहरी भाग, आन्तरिक भागों, व टोड़ों पर विविध रंगों में चित्रित किया है। कहीं-कहीं मंदिर की बाहरी दीवारों पर गजराज भी चित्रित है।

भिि।ा चित्रण एक श्रम-साध्य एवं धन्य-साध्य विधा है जो प्राय: वर्तमान में लुप्तप्राय: सी हो रही है। हमें यह प्रयास करना चाहिये कि ये भिि।ा चित्रकला रूपी धरोहर आने वाली पीढ़ी के लिये एक उदाहरण स्वरूप रह पाये।

संदर्भ


1. मुच्छकटिक; 5-50
2. हर्मन जैकोवी सम्पादित; समराइच्च कहा, पृ. 71, कुवलयमाला, पृ. 105
3. मोतीचन्द जैन; मिनियेचर पेंटिंग्स फॉम वेस्टर्न इंडिया, पृ. 28
4. आनन्द कुमारस्वामी; दी राजपूत पेंटिंग्स, हिरेन मुखर्जी, रूपलेखा, ओरिजन ऑफ राजस्थानी पेंटिंग, पृ. 43
5. राजेन्द्र राव एवं रीता रावत; राजस्थान का इतिहास, जयपुर, 1998, पृ. 406
6. आनन्द कुमारस्वामी, राजपूत पेंटिंग, वोल्यूम 18, दिल्ली, 1976, पृ. 2
7. राय कुष्णदास; भारत की चित्रकला, इलाहाबाद, 1972, पृ. 59
8. आनन्द कुमारस्वामी; पृ. 3
9. जयसिंह नीरज; राजस्थान पत्रिका, 1 सितम्बर, 1999, पृ. 1
10. आशुतोष दाधीच; ढूंढाड़ की भिि।ा चित्रकला का इतिहास (ल.क.अ.) जयपुर, 1994, पृ. 21
11. श्री सुदामा प्रसाद; आकृति, प्राचीन भारत में चित्रकला, अ□टूबर, 1968, पृ. 5
12. जयसिंह नीरज, राजस्थानी चित्रकला, (रा.हि.ग्रं.अ.) जयपुर, पृ.84

डॉ. बीना जैन
विभागाध्यक्ष, चित्रकला विभाग
रा.वि.वि., जयपुर

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# जैन चित्रों में 'अष्टमांगलिक' प्रतीक : एक अध्ययन

मांगलिक प्रतीकों की परम्परा वैदिक, जैन और बौद्ध धर्म में प्राचीन काल से है। महाभारत व वामनपुराण आदि में सजीव और अजीव मंगल द्रव्यों का वर्णन मिलता है। जैन मन्दिरों में भी मांगलिक यन्त्र, मन्त्र व तन्त्र आदि स्थापित किये जाते हैं। प्रतिमाओं, वस्त्रों आदि पर अंकित सिद्ध चक्र, ऋषिमंडल यन्त्र, सूरिमंत्र, हींकार मंत्र आदि प्रतीक प्रचलित है।[1] धार्मिक क्षेत्र में प्रतीकों का अत्यधिक महत्व है। धार्मिक संस्कारों, कर्मकाण्डों, मन्दिरों के निर्माण तथा मूर्ति स्थापना में, मन्दिर एवं मूर्तिकारों के रूपाकारों में एक विशिष्ट अर्थ, अभिप्राय और महत्व निहित रहता है।[2] निराकार ईश का नाम और उसकी प्रतिमा उसका प्रतीक है। हिरण्यगर्भ, ओंकार, सच्चिदानन्द आदि इनके शाब्दिक प्रतीक है। त्रिदेव–ब्रह्मा का प्रतीक है; नंदी, त्रिशूल, अर्द्धचन्द व डमरु–शिव के प्रतीक हैं; शंख, चक्र, पद्म, गरुड़ व शालिग्राम–विष्णु के प्रतीक है। देवताओं के वाहन भी देव प्रतीक माने गये हैं, यथा–मयूर–कार्तिकेय का, चूहा–गणेश का, सिंह–देवी शक्तियों का। अत्यन्त शिश्नोदरपरायण होने के कारण बकरा व्यक्ति की अतृप्त काम पिपासा और क्षुधा का प्रतीक माना गया है। वैदिक तथा पुराणों को (पौराणिक कथाओं को) उनके प्रतीकों के वास्तविक अर्थ जाने बिना सम्यक प्रकार से समझा ही नहीं जा सकता। गोपियाँ आत्मा की प्रतीक है, उनके वस्त्र उनकी अस्मिता के चीर–हरण की विख्यात लीला का प्रतीकात्मक अर्थ आत्मा के द्वारा अस्मिता का परिपूर्णतम समर्पण है। इसी प्रकार संस्कारों का भी प्रतीकात्मक महत्व है। मध्यकाल में तो तान्त्रिक मतावलम्बियों ने गुप्त व रहस्यात्मक भाषा का विपुल प्रयोग किया था। इसका एक मात्र कारण वही था कि वे अपनी साधना और अनुभूति के स्वरूप को सहज भाषा के माध्यम से प्रेषणीय नहीं बना सके इसलिए प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने इसे सुलभ बनाया। इन प्रतीकों के माध्यम से ही प्रकृति तथा मानव की एकरूपता, तदाशयता एवं उनकी एक–दूसरे पर निर्भरता का मर्म उद्घाटित होता है।[3]

चित्र–1 (मथुरा आयागपट्ट के मंगल प्रतीक)

भारतीय शास्त्रों के अनुसार स्वास्तिक सहित आठ मांगलिक चिन्ह है। जिनका सृजन मानव कल्याण के लिए भारतीय ऋषियों ने किया। इन्हें अष्ट मांगलिक कहा जाता है। निर्विवाद रूप से मांगलिक प्रतीकों या चिन्हों का

उल्लेख सभी धर्मग्रन्थों में तथा कतिपय लौकिक ग्रन्थों में अवश्य पाया जाता है परन्तु अष्टमंगल चिन्हों का सामूहिक अंकन जितना जैन कला में मुखर है, उतना सम्भवतः अन्यत्र नहीं। मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त जैन आयागपट्टों पर इनका सामूहिक अकंन प्राचीनतम ठहराया जा सकता है। इन आयागपट्टों का निर्माण काल प्रथम तथा द्वितीय शती ई०पूर्व० माना गया है। (चित्र 1) स्व. उमाकान्त प्रेमानन्द शाह का विचार था कि औपपातिक सूत्र 5 का पुहुमी या पुढ़वी शिलापट (पृथ्वी शिलापट) मथुरा के आयागपट्टों का पूर्व रूप रहा होगा। ये आयागपट्ट चैत्य–उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे किसी लघुपीठिका के ऊपर रखा जाता होगा और जिन पर उपासक फूल–माला आदि पूजन सामग्री चढ़ाते होगें।[4]

मथुरा से मिले कतिपय आयागपट्टों पर केवल मांगलिक प्रतीक उकेरे गए हैं और कुछ पर इन प्रतीकों के बीच केन्द्र में तीर्थकर की आसनस्थ प्रतिमा भी उकेरी गयी है। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि सम्भवतः तीर्थकर की प्रतिमा के इस प्राथमिक अंकन से पहले जैन धर्मानुयायी केवल आयागपट्टों पर उत्कीर्ण मांगलिक चिन्हों या प्रतीकों की पूजा किया करते होगें। अतएव मथुरा के ये आयागपट्ट जैन पूजा के प्रथम सोपान कहे जा सकते हैं।[5] आयागपट्टों पर उत्त्वनित तीर्थकरों की इन प्रतिमाओं के बाद ही उनकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ गढ़ी गयी थी। दूसरे शब्दों में जैन मूर्ति पूजा का विकास प्रतीक पूजा से हुआ था। मथुरा के इन आयागपट्टों पर प्रायः स्वास्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्द्धमान, भद्रासन, कलश, पुष्पपात्र, मीन–मिथुन आदि वही चिन्ह उत्कीर्ण है जिनकी गणना जैन ग्रन्थों में विशेषकर औपपतिक सूत्र 31 रायपसेणियसुत्र (कण्डिका– 66) तथा आचार दिनकर (2/4–11) में मिलती है। लगभग इसी प्रकार की अष्टमंगलों की गणना प्रवचन सारोद्वार, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, उत्तराध्ययन सूत्र, अभिधानि चिन्तामणि तिलोयपण्णति (2/22–62) और समवायांगसूत्र में भी की गई है।[6] (चित्र 2)

चित्र–2 (अष्टमंगल)

जैन संदर्भ में सामूहिक अष्टमांगलिक प्रतीक कतिपय जैन मन्दिरों और गुहामन्दिरों के सिरदल पर भी अंकित मिलते हैं। इनमें गुजरात के जूनागढ़ के निकट बाबा प्यारामठ की गुहा क्रमांक 'के' (ज्ञ) के सिरदल का उल्लेख मुख्य है।[7]

जैन धर्म में अष्टमंगलों की प्रस्तुति प्राचीनतम है।

चित्र–3 (अष्टमंगल)

अष्टमंगलों का सम्बन्ध तीर्थंकरों पर अंकित मंगल चिन्हों से भी है। (चित्र 3) जैन धर्म के दिग. म्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में अष्टमंगलों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है एवं इनका अंकन परकोटे या प्रस्तरपाद के अलंकरण में, चैत्यवृक्षों के चबूतरे अथवा दीवारों पर अंकित करने में किया गया है। इन सभी मांगलिक प्रतीकों का तात्पर्य एवं अर्न्तकथाएं निम्न हैं:–

चित्र–4 (जैन प्रतीक)

(1) स्वास्तिक : ये विलक्षण प्रतीक किसी धर्म विशेष या जाति–विशेष का चिन्ह न होकर सार्वजनिक तथा सार्वभौमिक प्रतीक है। इसकी व्यापक महत्ता भारतीय दर्शन में भी स्वीकार की गई है।[8] जैन धर्म में स्वास्तिक प्रतीक विविध मंगलदायक कार्यों में प्रयुक्त किया जाता रहा हैं। जैन धर्म में स्वस्तिक के ऊपर नंदिपद की भी अवधारणा की गई। स्वास्तिक में एक दूसरे को काटती हुई उर्ध्वमुखी तथा अधोमुखी रेखायें आत्मा एवं पुद्गल अर्थात जड़त्व का प्रतिनिधित्व करती हैं। दायीं ओर को मुड़ी चार छोटी रेखाएं भौतिक जगत में आत्मा के अस्तित्व के चार वर्गों को दर्शाती है। पहली अवस्था स्थावर अर्थात आदिम जड़ की हैं, तत्पश्चात् आत्मा वनस्पति एवं पशुजीवन की अवस्था में पहुँचती हैं, तीसरी अवस्था में आत्मा को मानव जीवन प्राप्त होती है, फिर चौथी अवस्था स्वर्गीय जीवन की हैं। ये सभी कृत्रिम अवस्थाएँ पुद्गल एवं आत्मा को विभिन्न स्थितियों का समन्वय है। आत्मा को बन्धनों से मुक्त कराने के लिए मानव को त्रिरत्न (सम्यक् दर्शन, ज्ञान व चरित्र) का अनुसरण करना चाहिए। जैन स्वास्तिक में त्रिरत्न रूपी तीन वृत्तों के ऊपर अर्धचन्द की आकृति दर्शायी जाती है। अर्धचन्द के बीच का वृत्त उस अवस्था का द्योतक है, जब आत्मा को पूर्ण चेतना प्राप्त हो जाती है और वह पुद्गल (पदार्थ) के संसर्ग से पूर्णरूप से मुक्त हो जाती हैं। (चित्र 4)

स्वास्तिक शब्द कल्याण का प्रतीक है। वैदिक साहित्य में कल्याण कारी स्वास्तिक मण्डल का उल्लेख किया गया हैं। (निरुक्त, अध्याय 11 खण्ड 45) जैन तथा बौद्ध साहित्य में स्वास्तिक एक अष्टमांगलिक प्रतीक माना गया है। प्रतिष्ठा पाठ (श्लोक 346–47), प्रतिष्ठा सारोद्वार (1/78–79) वास्तु सारा प्रकरण और अपराजित पृच्छा (सूत्र 221/पंक्ति 8) के अनुसार स्वास्तिक सातवें तीर्थकर सपार्श्वनाथ का चिन्ह था।[9] ललित विस्तार में सिद्ध र्थ के केश–वेश के स्वरूपों में इन्हीं चिन्हों का उल्लेख है, जिनमें स्वास्तिक की भी गणना है।[10] महापुरुष लक्षणों की गणना में भी स्वास्तिक उपस्थित है। महाव्युपत्ति (348) तथा अर्थविनिश्यसूत्र (13) में गिनाए गए 20 अनुव्यंजनों में स्वास्तिक का भी उल्लेख हैं। हलायुध ाकोश में इसे 'चतुर्विंशातिचिन्हान्तगर्त चिन्ह विशेष' कहा गया है।

स्वास्तिक का प्रागैतिहासिक रूप भारत में पंचमढ़ी क्षेत्र की बनिया–बेरी नामक गुफा के भीतरी और बाहरी शिलाश्रयों में भी मिलता है, अनेक प्राचीन अभिलेखों में भी स्वास्तिक

उत्कीर्ण हुआ है।[11] जैन शासक, खाखेल के हाथी गुफा अभिलेख में 'स्वास्तिक' के साथ 'श्री वत्स' का भी अंकन है। यहाँ स्वास्तिक 'स्वस्ति' को तथा श्री वत्स 'श्री' को द्योतित करता है।[12]

स्वास्तिक का सर्वाधिक विकसित एवं अंलकृत स्वरूप मथुरा के कुषाण कालीन जैन आयागपट्टों पर दिखाई देता है।[13] दोहरी रेखाओं से बने गोल के बीच में अष्टदल कमल के चारों और मोतियों से सुसज्जित चार भुजाओं वाले इस स्वस्तिक के चारों कोनों को चार कमल की पखुंडियों से जोड़ दिया गया है, जिसे मीन की आकृति से अलंकृत किया गया है (चित्र 5)

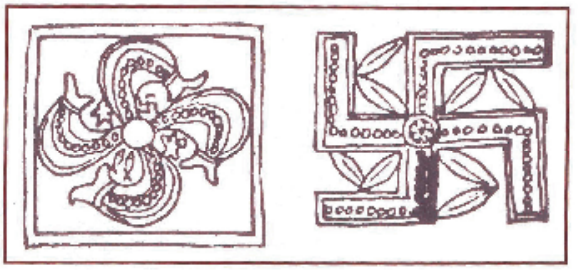

चित्र–5 (आयागपट्ट पर स्वास्तिक)

भारतीय अभिलेखों में आदि से अन्त तक स्वास्तिक का अंकन मिलता है अशोक के शिलालेख में स्वास्तिक के प्रतीक उत्कीर्ण है। बग्सर की पहाड़ी (बिहार) में स्थित कर्ण–गुहाभिलेख में, नासिक में उषवदात के अभिलेख में, भाजा, कूड़ा और जुन्नार के बौद्ध गुहाभिलेखों में, खण्डगिरी के हाथी गुफा तथा सिंह गुहाभिलेखों, मध्य–प्रदेश के गुना जिले में स्थित चन्देरी शिलाभिलेख में, मथुरा के प्रस्तर–अभिलेखों में सांची व अमरावती के स्तूप अभिलेखों में स्वास्तिक प्रतीक उत्कीर्ण है। खण्डगिरी (उड़ीसा) की अनन्त गुफा की भीतरी दीवार पर तीन प्रतीक है – भद्रासन, श्रीवत्स और स्वास्तिक। ये गुफाएं जैन भिक्षुओं के आवास के लिए निर्मित की गई थी। दार्शनिक दृष्टि से स्वस्तिक अनन्त सौन्दर्य, दिव्यशक्ति और चेतना का प्रतीक है। आर्शीवाद, मंगल एवं सौभाग्य के साथ ही वह सृजनात्मक शक्ति का द्योतक है।[14]

(2) श्रीवत्सः स्वस्तिक और श्रीवत्स भारतीय संस्कृति के सर्वाधिक प्राचीन मांगलिक चिन्ह हैं। स्वस्तिक सार्वभौमिकता का एवं श्रीवत्स सुख–सम्पन्नता का द्योतक है।[15] कला में कहीं–कहीं स्वस्तिक और श्रीवत्स के अकंन साथ–साथ प्रस्तुत किये गये हैं, ऐसे उदाहरण उड़ीसा से प्राप्त खाखेल के हाथी गुफा अभिलेख[16] मध्यप्रदेश के गुना जिले में स्थित चन्द. `री शिलाभिलेख में[17] तथा मथुरा से प्राप्त कुषाण अभिलेख में है।[18] भरहुत तथा सांची के वेदिका–स्तम्भों के चक्रों तथा अर्द्धचक्रों में श्रीवत्स का अंकन मात्र सज्जा के लिए ही हुआ है।[19]

श्रीवत्स की यह परम्परा अति प्राचीन है। इसकी उद्भावना आज से लगभग तीन

साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व हुई होगी। उस काल के उदाहरण हमें प्राचीन मातृदेवी की मृण्मूर्तियों के साथ पाई जाने वाली 'स्टार–शेड' मृण्मूर्तियों गंगाघाटी के एन्थ्रोपोमार्फिक ताम्र उपकरणों बोगाजकुई के अभिलखों में मिलते हैं। श्रीवत्स की यह मांगलिक परम्परा (क्रमशः श्री चक्रों एवं स्टार–शेड मृण्मूर्तियों के रूप में) शुंग युग तक चलती रही। तदन्तर इस प्रतीक की लोकप्रियता भारतीय कला के विविध मध्यमों के द्वारा कुषाण काल तक अनवरत् अभिव्यक्त होती रही।[20] कुषाण काल से श्रीवत्स की मांगलिक परम्परा में एक अभिनव अभिप्राय और जुड़ गया। वह अभिप्राय था महापुरुषों के वक्ष–लक्षण का। सर्वप्रथम इसका अंकन मथुरा की कुषाणकालीन जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं पर किया गया[21], बुद्ध के चरण–न्यासों पर बिठाया गया फिर विष्णु के वक्ष की शोभा बढ़ाने लगा। कालान्तर में श्रीवत्स वक्ष–भूषा का एक सामान्य अलंकरण हो गया और जैन, बौद्ध, वैष्णव व शैव आदि सभी छोटे–बड़े देवताओं के वक्ष पर विराजमान हो गया। उत्तरी भारत से प्रारम्भ होकर श्रीवत्स की यह वक्ष–लक्षण परम्परा सर्वत्र लोकप्रिय हो गई और डेढ हजार वर्षों तक निरन्तर भारतीय मूर्तिकला में विराजमान रही।

चित्र–6 (पूर्णघट)

(3) कलश : मांगलिक और श्शुभ प्रतीक के रूप में कलश का प्रयोग वैदिक काल से प्रारम्भ होता है। ऋग्वेद में पूर्णकलश[22], कुम्भ[23], व भद्रकलश[24] आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। कदाचित् कलश स्वर्णनिर्मित होते थे[25] और कुम्भ मिट्टी के बने होते थे।[26] आरम्भ से ही किसी न किसी रूप में कलश सृष्टि की अनन्तता का द्योतक रहा है। कालान्तर में यही विचार कुछ परिवर्तनों के साथ विद्यमान रहा। इसके साथ दार्शनिक विचारों को भी आरोपित किया गया, किन्तु जनसाधारण उन गूढ़ एवं रहस्मय विचारों को समझने मे असमर्थ था। फलतः सरलतम रूप में पूर्ण कलश में सृष्टि का रहस्य छिपा हुआ मानकर उसकी स्थापना मांगलिक अवसरों पर की एवं ईश्वर का वास समझकर उसे पूजने लगा।[27] (चित्र 6)

जैन–ग्रन्थ 'रायपसेणियम् सुत्तम्' में मतस्य व दर्पण आदि अष्टमांगलिक चिन्हों के अन्तर्गत कलश का भी उल्लेख है।[28] कलश उन्निसवें तीर्थकार मल्लिनाथ का लांछन माना गया है एवं तीर्थकरों की माताओं को दिखने वाले स्वप्नों में दो मंगल कलश भी थे जिसका अर्थ था कि उनका पुत्र संसार की सभी निधियों का स्वामी होगा। जैन धर्मानुयायी पूर्ण कलश में लक्ष्मी का वास मानते हैं। प्रतिमा रूप देने के लिए उस पर दो आँखे अंकित की जाती है।[29] कलश पर नेत्रों के अंकन के विषय में अनेक मत है। विल्हैय हटगैन के मतानुसार, "जैन लघुचित्रों में मंगल–कलश पर अंकित नेत्र अतीन्द्रियदर्शी ज्ञान के प्रतीक हैं,

जो सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु को देखने की क्षमता रखता है।" बाउन महोदय के अनुसार, "पूर्ण कलश बादल रूप में, जिनमें नेत्रों का संबंध सूर्य के अवशेषी चित्रण की ओर इंगित करता है, जो सब कुछ देखता और जानता है।"

(4) मीन–युगल : शोभा, सौभाग्य, आरक्षा एवं सृजन के लिए मीन की महत्ता स्वीकार की गई है।[30] प्रागैतिहासिक युग से लेकर आज तक हमारे जीवन में मीन के माध्यम से कल्याण की कामना की जाती रही है। जैन धर्म के अष्टमांगलिक चिन्हों में मीन युगल का विशिष्ट स्थान है।[31]

मीन युगल दम्पति नारी और पुरुष के एकात्मक स्वरूप के प्रतीक हैं। प्रारम्भिक बौद्ध एवं जैन स्तूपों, चैत्यों, आयागपट्टों, छत्रों अथवा पदों पर मिथुन के मांगलिक प्रतीक को मीन–मिथुन के रूप में ही उत्कीर्ण किया जाता था। धीरे–धीरे मीन–मिथुन के स्थान पर मानव–मिथुन के भी अंकन होने लगे। ऐसे मिथुन प्रतीक सांची, भरहुत, बोधगया तथा अमरावती के स्तूपों पर तथा बौद्ध चैत्यों पर उकेरे गये थे। आगे चलकर मध्यकालीन मन्दिरों की बाह्य दीवारों पर उत्कीर्ण इन मिथुनों में लौकिकता आ गयी एवं उनमें दम्पति का एकात्मक स्वरूप प्रदर्शित करने की परम्परा चल पड़ी। बौद्ध–जैन कला के मिथुनों के सांकेतिक भाव मध्ययुगीन हिन्दु कला में साक्षात संयोग में परिणित कर दिये गये। कोणार्क, खजुराहों व एलोरा आदि इन मिथुन–प्रतीकों के लिए प्रसिद्ध हैं।[32]

इसे तीर्थकर अरनाथ का लांछन माना जाता है। हेमचन्द द्वारा उल्लिखित मंगल द्रव्यों में चौथा द्रव्य मत्सय युगल हैं। चौदहवीं शती के श्वेताम्बर ग्रन्थ आचार दिनकर में की गयी व्याख्या के अनुसार मीन युगल कामदेव की ध्वजा पर अंकित होता है, अपनी हार के पश्चात् वह 'जिन' की पूजा करने आया था। अतः जैन अवधारणा में मत्सय युगल काम विजेता जिन की उपस्थिति का आभास कराता है।[33]

मीन का अंकन सर्वप्रथम सिन्धुघाटी की मोहरों पर अनेक रूपों में मिलता है। अयोध्या से प्राप्त सिक्के पर स्वास्तिक के साथ मत्सय का अंकन हुआ है।[34] मथुरा से ही मिली तीर्थकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा के पीछे अंकित नागफनों पर अष्टमांगलिक चिन्ह उत्कीर्ण हैं, इनमे एक चिन्ह मीन युगल का भी है।[35] मीन–मिथुन का यह मांगलिक प्रतीक नागार्जुनकोण्डा से मिले तृतीय शती ई. के बुध्दपदों की एड़ी तथा अंगुठें के पास वाली अंगुली पर भी उत्कीर्ण है। पुरातात्विक खुदाई से कुषाण–गुप्तकाल के जो मिट्टी के बर्तन अथवा उनके टुकड़े पाये गये है, उन पर फूल–पत्तियों तथा बेलबूटों के साथ मीन–मिथुन भी है।[36]

(5) दर्पण : अष्ट मंगलों की सूची में एक मंगल दर्पण है।[37] दर्पण का प्रयोग जैन धर्म के सात मंगलों के समान ही प्रत्येक जैन कर्मकाण्ड में किया जाता है। भगवान के समवसरण में प्रत्येक द्वार पर आठ मंगलों में दर्पण का स्थान भी निश्चित है।

वास्तव में दर्पण आत्मा के यथार्थ रूप का दर्शन कराता है। दर्पण का उपमान के रूप में जैन धर्म में उपयोग हुआ है। पूज्य उपाध्याय श्री 108 आनन्द सागर जी 'मोन–प्रिय' ने दर्पण और मन का संबंध बताते हुए कहा है कि यह मन दर्पण के समान है। 'दर्पण' शब्द

की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि दर्प+ण = दर्पण, अर्थात जिसमें दर्पन हो, घमण्ड न हो, मान न हो, अहंकार न हो, वह दर्पण है। यदि आप इन सब से मुक्त हो जाये तो स्वच्छ मन के माध्यम से तुम्हें स्वयं के दर्शन हो जायेगें, वह चाहे पूजा अभिषेक के माध्यम से हो या दर्शक स्वाध्याय से हो, अर्थात अपनी आत्मा के दर्शन का वास्तविक रूप ही दर्पण है। इसी कारण जिनेन्द्र पूजा अथवा मन्दिर स्थापना के अवसर पर अन्य पूजा सामग्री के साथ दर्पण को भी भेंट स्वरूप चढ़ाया जाता था[38], धार्मिक दर्पण को अलंकृत आधार सहित अंकित किया जाता है। शाह के अनुसार, "दर्पण किसी का भी सच्चा प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है।" योग सिद्धान्त के अनुसार, 'दर्पण चरित्र के दो पहलुओं को प्रस्तुत करता है।' श्रेताश्रतरोप उपनिषद् के अनुसार, जिस प्रकार दर्पण की धूल को साफ करके चमकाया जा सकता है। उसी प्रकार आत्मा अपने स्वयं की वास्तविकता का अवलोकन करके उसे स्वच्छ करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है तथा दुखों से छुटकारा पा सकती है।

(6) चामर : प्राचीन भारतीय साहित्य में चामर का प्रचुर उल्लेख है। देवताओं और पुण्य पुरुषों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए इनका प्रयोग होता था। क्योंकि राजा को देवता का अंश माना जाता था,

अतः उनके लिए चामर धारिणी अथवा चामर धर द्वारा हवा देने की व्यवस्था थी। पुरातन कलाकृतियों व सिक्कों आदि से इसके स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। दुर्जनपुर से प्राप्त चामर जिसे 'जिन' के दोनों ओर दो सेवक धारण किये हैं, अत्यन्त मोटा घना व लम्बे रेशों वाला अंकित किया गया है। मौर्यकाल में दीदारगंज से प्राप्त एक यक्षी की मूर्ति को चामरध ाारिणी कहा गया है। यह मूर्ति इतनी सुन्दर व सन्तुलित है कि डा. आनन्द कुमार स्वामी ने उसे "भारत की मोनालिसा की नाम से विभूषित किया है।" अनेक जैन–बौद्ध गुफाओं के बाहर यक्ष–याक्षिणी, देव व कुबेरों की मूर्तियों भी चामर सहित अंकित है। मथुरा से प्राप्त अनेक मूर्तियों में भी चामर का प्रयोग दिखाई देता है।

जैन मान्यता के अनुसार भगवान मल्लिनाथ को केवल ज्ञान प्राप्त होते समय एक देव ने ऐरावत हाथी की रचना की थी, जो बजती हुई घंटियों और चामरों से अलंकृत था। कर्म शत्रुओं को जीतकर ही जितेन्द्र भगवान मोक्ष को प्राप्त हुए। अतः शत्रु समूह पर जीत को दर्शाने वाला मंगल ही चामर कहलाता है।

(7) ध्वजा : जैन अष्ट मांगलिक प्रतीकों में ध्वजा एक नितान्त उत्कर्षमय अभिव्यक्ति का अभिप्राय है। आदिकाल से ही चक्रवर्ती सम्राटों के द्वारा यह बल वैभव के प्रदर्शन का माध्यम रहा है। महाभारत में कुरुक्षेत्र के युद्ध के समय जब भगवान कृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश दे रहे थे, उस समय पवन पुत्र हनुमान विजय पताका लिए रथ के शीर्ष भाग पर सुशोभित थे। यह विजय पताकाओं की आदि परम्परा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यद्यपि ध्वजा की प्रतीकात्मकता विभिन्न कालों में पृथक–पृथक रही है। तथापि इसका उपयोग लगभग सभी धर्मानुयायियों द्वारा हुआ है। जैन तीर्थकरों में माता द्वारा देखे गये मंगल प्रतीक स्वप्नों में ध्वजा का भी विशिष्ट स्थान है।

ध्वजा या पताका का मांगलिक अंकन हमें पचंमार्ग सिक्कों के साथ ही मिलने लगता है। इससे ध्वजा का ध ार्मिक पक्ष स्पष्ट प्रदर्शित होता है। यही कारण है कि पांच रंगों से सुसज्जित जैन ध्वजा आज भी दिव्यता व सौम्यता के साथ–साथ वीरत्व के भाव को द्विगुणित कर रही है, जो जैन धर्म का अपना विशिष्ट लक्षण है।

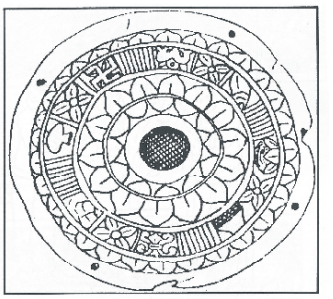

चित्र–7 (गोल छत्र में मांगलिक

(8) छत्र : भारत के सभी धार्मिक सम्प्रदायों में छत्र समान रूप से लोकप्रिय रहा है। जैन धर्म में इसकी विशेष मान्यता है। आसन, स्तम्भ अथवा त्रिरत्न पर प्रतिष्ठित, सुन्दर मालाओं से अलंकृत और प्रायः उपासकों और विद्याधरों से सुपूजित 'छत्र' प्रतीक के विविध अकंन भरहुत, सांची, बोधगया व अमरावती आदि विभिन्न स्थानों के उत्कीर्ण शिल्प में पाये गये हैं। बौद्ध धर्म में भगवान बुद्ध के प्रतीकों के ऊपर अधिकांशतया छत्र एवं छत्रावलियों का प्रयोग हुआ है।[39] भारतीय अभिलेखों में अंकित मांगलिक प्रतीकों के ऊपर इकहरे छत्र का अकंन पाया गया है।[40] कोशाम्बी से प्राप्त गुप्तकालीन छत्र उच्च मंगल द्रव्यों से सुसज्जित है। (चित्र–7)

जैन मान्यता के अनुसार छत्र का विशेष महत्व है। जगत के सर्व जीवों को मुक्ति दिलाने के लिए अरिहन्त भगवान छत्राकार है। अतः सिद्ध छत्राकार होने से 'छत्र' को मंगल कहा गया है। तीर्थंकर मूर्तियों के साथ एक छत्र व तीन छत्रों का अकंन भी किया जाता है। छत्र द्रिव्यता एवं श्रेष्ठता का द्योतक है, इसी कारण प्रतिमाओं के सिर पर छत्र लगाने की परम्परा का आरम्भ हुआ।[41]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि धार्मिक सिद्धान्तों, उददेश्यों एवं आदर्शों की नींव पर कला के भवन का निर्माण हुआ है। धर्म के गूढ़ तत्वों एवं रहस्यों का उद्घाटन बहुत कुछ कला के द्वारा होता है। अतः कला के द्वारा समाज धर्म को ग्रहण करता है, इसी कारण प्राचीन भारतीय कला धर्म प्रधान थी एवं प्रसिद्ध कला–स्थल किसी न किसी धर्म के महान केन्द्र थे। वहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ एवं स्थापत्य के दृष्टान्त उस धर्म–विशेष के आदर्शों एवं सिद्धान्तों का प्रदर्शन करते हैं। कला परम्परा के विकास के साथ इन प्रतीकों एवं निदानों के अर्थ एवं भाव भी व्यापक होते गये, कालान्तर में प्रत्येक 'प्रतीक' विशिष्ट अर्थ का बोध ाक बन गया। यह प्रवृत्ति धर्म एवं दर्शन के विकास के फलस्वरूप और भी पल्लवित हुई, क्योंकि धार्मिक एवं दार्शनिक गूढ़ के स्पष्टीकरण हेतु कला माध्यम बनी। इस प्रकार कला में धार्मिक एवं दार्शनिक गुणों का आरोपण होता गया, वह सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण कर्त्तव्य निभाने लगी और लगभग प्रत्येक सामाजिक,

धार्मिक एवं अन्य शुभ अवसरों पर मंगलमय भावना से परिपूर्ण होने के कारण इस प्रतीकों को विभिन्न रूप में उपस्थित किया जाने लगा।

इस दृष्टि से, भारतीय कला, साहित्य और इतिहास में जैन धर्म का उल्लेखनीय स्थान

है जिसने अनेक युगों की कला धाराओं को प्रभावित किया है। जैन तीर्थ एवं आवास स्थल आदि कला के भण्डार रहे हैं, कदाचित् इसी कारण मन्दिरों और मूर्तियों को संस्कृति के प्रतीक के रूप में स्वीकारा गया। जैन धर्मावलाम्बियों ने सदैव ललित कलाओं को प्रश्रय–प्रोत्साहन दिया है क्योंकि जैन कलाकृतियों की भावभूमि पर धर्म और दर्शन का प्रभुत्व रहा है, अतएव जैन चित्रकला में मांगलिक प्रतीकों का योगदान कला की अन्य विधाओं की अपेक्षा कही अधिक है जो जैन मुनियों व कलाकारों की भारतीय कला के इतिहास में अतुलनीय देन कही जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ :


1. पवन कुमार जैन : जैन कला के प्रतीक, पृष्ठ सं. 50
2. हिन्दी साहित्य कोश : 'प्रतीकवाद', पृष्ठ सं. 472
3. गोपाल मधुकर : भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं. 50
4. उमाकान्त प्रेमनन्द शाह : स्टडीज इन जैन आर्ट, बनारस, 1955, पृष्ठ सं. 69
5. कृष्णदत्त वाजपेयी : 'प्राचीन भारत की जैन मूर्तिकला', शिक्षा, जुलाई – 1952, चित्र–1
6. ए.एल. श्रीवास्तव : भारतीय कला प्रतीक, पृष्ठ सं. 77
7. मंगलयतन पत्रिका : जनवरी 2003, पृष्ठ सं. 20–21
8. प्रभाशंकर पाण्डेय : प्राचीन भारतीय कला में प्रतीक, दिल्ली, 2001, पृष्ठ सं. 180
9. रमेशचन्द्र मजूमदार : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, पृष्ठ सं. 426
10. ए.एल. श्रीवास्तव : भारतीय कला प्रतीक पृष्ठ सं. 77
11. जगदीश गुप्त : प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, पृष्ठ सं. 418
12. रायगोविन्द चन्द्र : प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, पृष्ठ सं. 9, 14–15
13. यू.पी. शाह : स्टडीज इन जैन आर्ट, बनारस, 1955, पृष्ठ सं. 111
14. शान्ति स्वरूप : 5000 ईयर्स ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राट्स इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृष्ठ सं. 239
15. श्रीवत्स च स्वरूप च : गोपाल तापनीयोपनिषद
    वर्तते लाँछने : सह / श्री वत्स
    लक्षणं तस्मात् कश्यते ब्रह्मवादिभि।।
16. दिनेशचन्द सरकार : सेलेक्ट इन्सिक्रप्शन, वॉल्यूम बुक–2, सं. 91, फलक–38
17. इण्डियन आर्कियोलॉजी द रिव्यू, 1971–72 पृष्ठ सं. 53
18. रमेशचन्द शर्मा : न्यू इन्सिक्रप्शन, फ्रॉम मथुरा बुलेटिन ऑव म्यूजियमाज एण्ड आर्कियोलॉजी इन यू.पी. सं. 8 / 1971
19. ए.एल. श्रीवास्तव : भारतीय कला प्रतीक, पृष्ठ सं. 40
20. प्रभाशंकर पाण्डेय : प्राचीन भारतीय कला में प्रतीक, दिल्ली, 2001, पृष्ठ सं. 264
21. तीर्थकारों के वक्ष पर अंकित श्रीवत्स कैवल्य (ज्ञान) का प्रतीक माना जाता है।
22. आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा : ऋग्वेद 3, 32, 15
    सिक्तेवकोशं सिसचे पिबध्ये
23. युव नश स्तुवते वज्रियाय : ऋग्वेद 1,1,16,7
    कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम।
    करोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः
    शत कुंभा असिचतं सुरायाः।।
24. एतानि भद्रा कलश क्रियाम : ऋग्वेद 10,32,9
    कुरू श्रवण ददतो मधानि।
    दान इन्दो मद्यवान सो अस्त्वयं

च सोमो ह्रदियं विभर्मि ।।
25. दशते कलशानां : ऋग्वेद 4,32,18
हिरण्यानामधीमही
26. नव भिन्न कुम्भका : ऋग्वेद 10, 89, 1
27. मधुलिका वपाजपेयी : मध्यप्रदेश की जैन कला, पृष्ठ सं. 176
28. रायपसेणियसुत्त : कंडिका 66 पृष्ठ सं. 136
कंडिका 99 पृष्ठ सं. 161
29. गोण्डे : आस्पेक्ट्स ऑफ वैष्णविज्म, पृष्ठ सं. 220
30. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी : मथुरा की मूर्तिकला, पटना, 1977, पृष्ठ सं. 131
31. रायपसेणियसुत्त : पृष्ठ सं. 80 (अभयदेव सूरी कृत भाष्य, अहमदाबाद, वि.सं.1994)

रमेश चन्द मीणा
शोधकर्ता,चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय : एक परिचय

जिस तरह मछली कभी पानी से अलग नहीं हो सकती है तो □या? मनुष्य अपने देश, समाज और उसके अक्षुण्ण परम्परागत अतीत के सार्वभौमिक सत्य से विलग रह सकता हैं अर्थात् नहीं।

समृद्ध एवं गौरवशाली भारतीय परम्परा का मह□व व समृद्धि, अनेक कारणों से नष्ट भी हुई है तो कई नये पृष्ठों को भी खोज निकाला गया है।[1]

महान चित्रकार व कला समीक्षक 'के.के. है□बर' ने कहा था कि, ''समाज को संवेदनशील बनाने के लिए हमने □या किया? हमने लोगों को □या दिया? न अच्छे संग्रहालय दिये न अच्छी कलादीर्घायें।''[2]

ये श□द है□बर ने उस समय परम्परागत सत्य को वर्तमान से जोड़ने के लिए, 'अंधेरे को सफेदी से पोतने के प्रयास' को दृष्टव्य रख अभिव्य□त किये थे। विगत कुछ समय से भारतवासियों सहित विदेशियों ने भी इन उचित प्रश्नों के मर्म को पहचाना हैं। भारतीय परम्परा के सार्वभौमिक सत्य, अस्तित्व व मह□व को चिह्नित किया गया हैं। परिणामस्वरूप भारतीय प्रदर्शित में अनेक संग्रहालय, कलादीर्घायें, आकादमियाँ, शोध संस्थाएँ आदि परिलक्षित होते हैं। इनमें प्रदर्शीत व संगृहीत सम्पूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य यथा-चित्र, पाषाण व मृण प्रतिमा व अन्य मह□वपूर्ण भारतीय इतिहास व दर्शन का 'मेरुदण्ड' हैं। इसी कड़ी का एक जाज्वल्यमान दृष्टान्त है-

'जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय'

जयपुर केन्द्रीय संग्रहालय की महिमा अणत,
अणत किया उपकार,
प्रादर्शो को सजेजकर,
गौरवमयी अतीत दिखावन हार।

स्थिति एवं स्थापना - जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय राजस्थान राज्य का प्रथम संग्रहालय है। इसकी स्थापना भारत में संग्रहालय के विकास के द्वितीय चरण (1858-1998 ई.) में हुई थी। सर्वप्रथम 21 अगस्त 1885 में 'कोलोन वाल्टर' के द्वारा राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट के कुछ अस्थायी कक्षों में संग्रहलाय की परिकल्पना साकार की गई। तदोपरान्त, 1886 ई. में इस

संग्रहालय को जयपुर के 'हृदय स्थल' रामनिवास बाग के वर्तमान भवन में (एलबर्ट हॉल) स्थानान्तरित कर, रामसिंह द्वितीय के शासन काल में संग्रहालय स्थापना के कार्य को मूर्त रूप प्रदान किया गया। 21 फरवरी, 1887 में 'सर एडवर्ड ब्राडफोर्ड' द्वारा इसका औपचारिक उद्घाटन किया गया। साथ ही इस संग्रहालय को जनसामान्य के लिए खोल दिया गया। इस भवन की स्थापना में 5 लाख, 1 हजार, 36 रुपये की लागत आई।

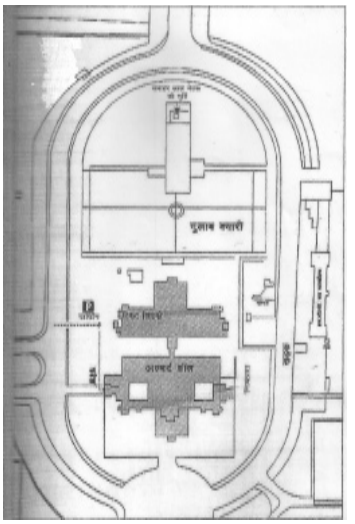

राम निवास बाग–दक्षिण दिशा

नामकरण – जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय का नामकरण 'प्रिन्स एलबर्ट' के नाम का आधार ग्रहण कर 'एलबर्ट हॉल' किया गया। प्रिन्स एलबर्ट ने इस संग्रहालय भवन की नींव का प्रथम पत्थर अपने करकमलों से रखा था। इस संग्रहालय को जनसामान्य में आजायबघर के नाम से भी जाना जाता रहा है। वर्तमान में इसे जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय कहा जाता है।

वास्तुकार एवं वास्तुकला – जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय भवन के वास्तुकार का नाम 'स्विस्ट्न जैकब' था।[3] इस भवन का निर्माण 'इण्डो सारसैनिक' या 'इण्डो पर्सियन' वास्तुकला शैली में किया गया। प्रस्तुत वास्तुकला शैली में हिन्दू, मुस्लिम व अंग्रेजी स्थापत्य शैली का मिश्रण व समन्वय था। इस वास्तुकला शैली को मूर्त रूप जयपुर के चन्दर व तारा मिस्त्रियों ने अपनी सर्वांगीण निपुणता के साथ दिया।

संग्रह–कक्ष

जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय का समृद्ध संचय वैविध्यमयी हैं। संग्रहलाय में रखे लगभग 28,000 प्रादर्शों को 17 संग्रह कक्षों में प्रदर्शित किया गया हैं। जिनको अपने–अपने गुणधर्म के आधार पर अलग–अलग नामों के प्रदर्शनी कक्षों में संगृहीत किया हैं। इन प्रदर्शनी कक्षों को अपना स्वयं का विशिष्ट आकर्षण निहित हैं। जो सम्पूर्ण संग्रहालय को सावैभौमिकता प्रदान करता है।

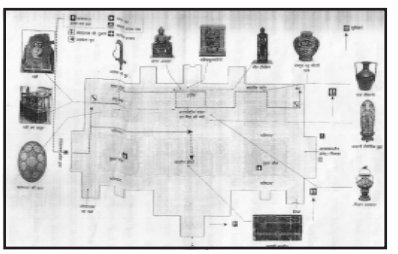

भूतल पर अवस्थित कक्ष

भूतल पर अवस्थित संग्रह कक्ष – जयपुर केन्द्रीय संग्रहालय में प्रवेश करते ही भूतल पर धातुकला, अस्त्र–शस्त्र, अन्तर्राष्ट्रीय कला, पाषाण मूर्ति व मृणपात्र आदि विभिन्न विषयों से युक्त नयनाभिराम संग्रह कक्ष अवस्थित हैं।

धातुकला संग्रह कक्ष – धातुकला संग्रह कक्ष में भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में 19वीं शता□दी में प्रचलित पीतल, काँस्य, रजत, जस्ता और अन्य मिश्रित धातुओं से निर्मित बर्तनों और आकृतियों, रामायण, महाभारत और अश्वमेघ की कथाओं के उत्खनित अपूर्व ढालों, दस नक्षत्रों तथा राशियों के प्रतीकों से विभूषित अद्वितीय थालों का संग्रह है। यथा–दशावतार थाल, अश्वमेघ ढाल, महाविद्या की थाली, हिरण, बारहसिंहा, ईरानी हु□का, पानदान, गंगाबख्श द्वारा बनी महाभारत के दृश्यों की ढाल, मयूर हस्तावा, गरुढ़ हस्तावा, सांप की सुराही, गुलाबदानी बिस्कुट रखने का डि□बा, गणेश कटोरा, तिथियों से अलंकृत थाली, चायदानी, नन्दी आसीन शिव–पार्वती आदि व अन्य मह□वपूर्ण अलंकृत धातुनिर्मित पात्र सुशोभित हैं।

अस्त्र–शस्त्र संग्रह कक्ष – अस्त्र–शस्त्र कक्ष में राजपूत, मुगल, हैदराबादी, अफगान, ईरानी, अरब, तुर्की–तलवारे तथा अलंकृत खड़ग मूठे, सिंहाकार छुरियाँ, तनुभाण शिरस्त्राण, गदा, भाले, नेजे, ढाले, धनुष तथा बाण, सोने–चाँदी में कोफ्तकारी के काम की एवं चपड़ी चन्दरस के काम युक्त अस्त्र–शस्त्र, फौलाद की तलवारें, अरबी व संस्कृत अभिलेख युक्त हथियार संग्रहीत हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय कला संग्रह कक्ष – अन्तर्राष्ट्रीय कला संग्रह कक्ष में मध्यकालीन यूरोप के संग्रह की प्रतिकृतियाँ जैकब व जोसेफ मिलन, जोसेफ का पिता त्याग, हाइजियाँ व □युपिड अलंकृत मंजूषा, ग्रेको–रोमन संग्रह की प्रतिकृतियाँ (टाइल पर किताब पढ़ती मिल्टन, मानव की सात अवस्था, कलाकार मार्कस, विलओदी विश्व, □यूपिड़ साइक, तीनों चीनी मिट्टी की टाइल पर), 19वीं सदी की जापान की कला (तलवार, पात्र, जापानी गुडियाओं का समूह, धातु प्रतिमा, दुकानदार, साबुनदानी, तीर्थ यात्री आदि), भूमिस्पर्श मुद्रा में नेपाली बुद्ध (पीतल), मिश्र का संग्रह (असेखेत दैवी संरक्षिका, आमेन होतेप फरोहा, 330–322 ई.पू. की संरक्षित मृतदेह, मिश्र देव परिवार) बर्मा व श्रीलंका का संग्रह (बुद्ध, दानव, अभिनेत्री, बैलून सैनिक, पुरुष, भिक्षारी, स्त्री, मंजूषा, बैलगाड़ी) डाल्टन, ईप्शन, मिल्टन द्वारा निर्मित यूरोपीय मिट्टी के पात्र, हंगरियन बर्तन, जापानी पात्र, ईरानी–तुर्की बर्तन, जार्जयोन्स वेजबुड का संग्रह, दिल्ली स्कूल ऑफ आर्ट, नई दिल्ली, मद्रास स्कूल ऑफ आर्ट, चेन्नई, मुम्बई स्कूल ऑफ आर्ट, मुम्बई में निर्मित पात्र आदि व अन्य मह□वपूर्ण प्रादर्शों का इस कक्ष में अमूल्य संकलन है।

पाषाण मूर्ति संग्रह कक्ष – इस कक्ष में बलुए पत्थर से निर्मित चामुण्डा प्रतिमा, (बगरु); सफेद संगमरमर की ब्राह्मणी मूर्ति, (सिरोही); मातृका पट्ट, (आभानेरी); बलुए पत्थर से निर्मित कार्तिकेय मूर्ति, (आभानेरी); शिव मूर्ति, (उदयपुर); वीणाधारी शिव प्रतिमा, (सांभर); महिषासुर मर्दनी की मूर्ति, (आभानेरी); चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा, (सांभर); मुनि सुब्रतनाथ मूर्ति, नहरड़ (झुंझुनु), वराह प्रतिमा, महुआ (दौसा), जो लाल बलुए पत्थर से निर्मित हैं। काले पत्थर से निर्मित लक्ष्मीनारायण प्रतिमा, चाकसू (जयपुर) आदि संगृहीत हैं। ये सभी 8वीं सदीं से 12वीं सदी के मध्य की निर्मित हैं। साथ ही, बलुए पत्थर से निर्मित यक्षी प्रतिमा (वाराणसी); व काले पत्थर

से निर्मित बुद्ध मूर्ति (गांधार शैली); आदि (चौथी शता□दी) की प्रतिमा भी संग्रहीत हैं।

भारतीय मृण्पात्र संग्रह कक्ष – भारतीय मण्पात्र संग्रह कक्ष में भारतीय पृण्पात्रों का 19वीं शता□दी का सर्वोत्कृष्ट संग्रह–पाटन, बीकानेर, बंगाल, बहावलपुर, बुलन्दशहर (खुर्जा) तथा हैदराबाद से प्राप्त कांचीय, ओपरहित, पारम्परिक मृदभाण्ड, मुम्बई, सिन्ध, मुल्तान, दिल्ली आदि से प्राप्त कांचीय ओपयुक्त मृण्पात्र तथा जयपुर के पुराने नीले मृण्पात्र संग्रहीत हैं।

गलीचा संग्रह कक्ष – गलीचा संग्रह कक्ष में दुर्लभ ईरानी कालीन हैं, जो विश्व के सुन्दरतम कालीनों में से एक है। इसे मिर्जा राजा जयसिंह ने 1632 ई. में आम्बेर के महलों के लिए खरीदा था। चारबाग–शैली के इस कालीन के बीचो–बीच तालाब है। उसके चारों ओर एक बगीचा है जो कई भागों में विभक्त है। पशु–पक्षियों और नाना प्रकार के वृक्षों से भरे इसके बहुरंगी उद्यान का सौन्दर्य अनुपम है।[4] यह गलीचा 28X12 के आकार का है। इसमें एक इंच में 200 गांठे हैं, जिससे इसके कार्य की बारिकी का भान होता है। विश्व में मात्र ऐसे छः गलीचे ही उपल□ध हैं, जिनमें से यह एक है।

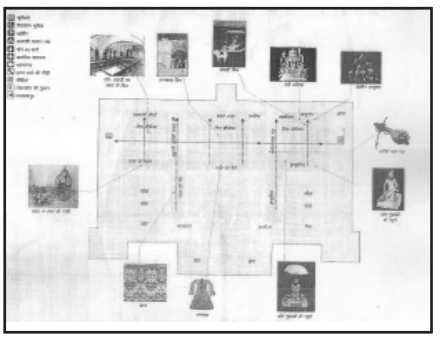

प्रथम तल पर अवस्थित कक्ष

प्रथम तल पर अवस्थित संग्रह कक्ष – जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय के प्रथम तल पर लघुचित्र संग्रह कक्ष, मृण्मूर्ति संग्रह कक्ष, वाद्य यंत्र संग्रह कक्ष, वस्त्र संगह कक्ष, काष्ठकला संग्रह कक्ष, लाक्षाकार्य संग्रह र्कक्ष, आभूषण व हाथी दाँत कार्य संग्रह कक्ष आदि व विभिन्न शीर्षकों से युक्त संग्रह कक्ष अवस्थित हैं। जो जयपुर केन्द्रीय संग्रहालय को सम्पूर्णता प्रदान करते हैं।

लघुचित्र संग्रह कक्ष – प्रथम तल पर अवस्थित तीन दीर्घाओं में लघुचित्र संगृहित है। मेवाड़ शैली, जयपुर शैली, किशनगढ़ शैली, जोधपुर शैली, बीकानेर शैली, कोटा शैली, बूंदी शैली, कांगड शैली, मुगल शैली, कम्पनी शैली आदि विभिन्न शैलियों के चित्र इन दीर्घाओं की शोभा बढ़ा रहे हैं। प्रस्तुत लघुचित्र संग्रह को जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय के समस्त समृद्ध संचय का संग्रहराज कहा जा सकता है।

मृण्मूर्ति संग्रह कक्ष – मृण्मर्ति संग्रह कक्ष में 19वीं सदी में निर्मित वैविध्यमयी मृण्मूर्तियों की अत्यन्त लावण्यमयी शृंखला है। जिसमें कुम्हकार, लखेरा, लुहार, सुनार की कार्यशाला, निर्गुण, सगुण, शैव, वैष्णव, वैरागी आदि भक्ति में लीन विभिन्न मुद्राओं में साधु योगासन की विभिन्न योगमुद्राओं में व्यक्ति, भिश्ती, धोबी, पंडित, सफाईवाला, बागवान, सिपाही, व्यापारी, बहूरूपियाँ, मानवाकृति युक्त घोड़ा, कसीदा काढ़ने वाला, बुनकर, वैश्या आदि व अन्य मह□वपूर्ण प्रादर्शों का संकलन है।

वाद्ययंत्र संग्रह कक्ष – वाद्ययंत्र संग्रह कक्ष में प्राचीन भारतीय वाद्ययंत्र संगृहीत है। जिनमें, सारंगी, पूंगी, शहनाई, तानपूरा, वीणा, तबला, ढोल, प्लेट तरंग, सितार, इकतारा, चौतारा, रकाब, मेडोलियन, रावणहत्था आदि प्रमुख हैं।

वस्त्र संग्रह कक्ष – वस्त्र संग्रह कक्ष प्रथम तल पर अवस्थित बिचली सुरंग कक्ष में अवस्थित है। जिसमें विभिन्न जाति, समुदायों व समयों की पगडी, लकड़ी व पीतल के ठप्पे, किमख्वाब, मशरू आदि विशेषत: संगृहीत है।

काष्ठ कला संग्रह कक्ष – काष्ठ कला संग्रह कक्ष में उ□ारप्रदेश, पंजाब, गुजरात, राज-स्थान (खण्डेला), दक्षिण भारतीय, जापान, बर्मा, श्रीलंका आदि क्षेत्रों से प्राप्त लकड़ी की अलंकरणात्मक चित्रात्मक व पच्चीकारी युक्त, सामग्री संगृहीत हैं। जिनमें किवाड़, सन्दूक, काँच फ्रेम, फूलदान सिंगारदान, चाकू, चम्मच, आलमारी, ट्रे, मेज आदि का प्रमुखत: संकलन है।

लाक्षाकार्य संग्रह कक्ष – लाक्षाकार्य संग्रहण कक्ष में कश्मीर, पंजाब, सिंध, आगरा, बीकानेर, राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर आदि में निर्मित जलपात्र, डि□बें, गाड़ी, छड़ी, देहाती महिला, पायें, जगन्नाथ मंदिर, कमलदान, संदूक, मोमब□ाी को खड़ी करने का आधार आदि का प्रमुख संकलन हैं।

हाथी दाँत कार्य व आभूषण संग्रह कक्ष – हाथी दाँत कार्य व आभूषण संग्रह कक्ष में हाथी दाँत निर्मित वस्तुएँ जैसे-सुरमादानी, दवाब□श, शृंगारदान, नाविक सहित नाव, फूल लिए पुरुष, महाराजा रणजीत सिंह, दर्पण के साथ स्त्री, घोड़ा, औषधी, खरगोश, बहली, गाये, बछड़ा, बैलगाड़ी, घुड़सवार, हत्था, चौबे, छड़ी, खडाऊ आदि व अन्य मह□वपूर्ण हाथी दाँत निर्मित वस्तुओं का संकलन है।

साथ ही इसी कक्ष में सोना, चाँदी, पीतल, गिलट आदि धातुओं से निर्मित विभिन्न प्रकार के आभूषण यथा-अगूँठी, पहुँची, बाजूबंध, करधनी, कंगन, कर्णफूल, नेवरी, कडे, बालियाँ आदि संगृहित है।

प्रस्तर शिल्प संग्रह कक्ष – प्रस्तर शिल्प संग्रह कक्ष में गैटोर की छतरियों की प्रतिकृति, भारतीय देवी-देवता यथा – वराह, कच्छप, मत्स्य, विष्णु, यक्षिणी, शिलादेवी, काली, रू□मणी, लक्ष्मी, सिंहवाहिनी महिषासुर मर्दनी, दुर्गा, कल्कि, बुद्ध, राम, परशुराम, नृसिंह, बृहस्पत, मंगल, सूर्य, चन्द्र अग्नि, इन्द्र, केतु, राहु, गणेश, शनि, वायु, वरुण, यम, अन्नपूर्णा, यमुना, गंगा, त्रिवेधी, कुबेर, ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर, विमलनाथ, अननतनाथ, शिव, कामदेव, कार्तिकेय, नंदी, भैरव, अर्द्धनारीश्वर, हनुमान, जगन्नाथ, भोमिया जी आदि व हाथी, तश्तरी, संदुक, बैल, घुड़सवार, गैंडा, गाय, अलंकृत जाली, सांगानेर जो जैन मंदिर आदि प्रस्तर निर्मित मह□वपूर्ण सामग्री संगृहीत हैं।

अन्य मह□वपूर्ण जानकारियाँ – जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय में एक समृद्ध पुस्तकालय भी है। संग्रहालय भवन के भूमिगत भाग में संग्रहालय का भण्डार गृह अवस्थित है। जो 50X50 फीट

आकार का है। संग्रहालय में सुरक्षा की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए सी.सी.टी.वी. कैमरे प्रत्येक संग्रह कक्ष व सुरक्षा बिन्दुओं पर अवस्थित हैं। साथ ही उचित संख्या में इंटेलिजेन्ट सि□योरिटी अलर्ट, सुरक्षाकर्मी व पुलिसकर्मी हैं जो सुरक्षा व्यवस्था का पूर्णता प्रदान करते हैं।

जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय के खुलने का समय प्रातः 9.45 व बंद होने का समय सायं 5.15 है। प्रवेश शुल्क भारतीय नागरिकों से 15 रु. व भारतीय विद्यार्थियों से 5 रु. व विदेशी नागरिकों से 100 रु. लिया जाता है। संग्रहालय में अल्बर्ट्स 1589 नाम से एक रेस्तरां है। साथ ही पर्यटकों के लिए 'ऑडियो गाइड' की सुविधा भी प्रदान की जाती है।

जयपुर संग्रहालय का ई-मेल है-

1. dirach_raj@rediffmail.co.in
2. albert.museumjaiur@gamil.com

Ph. No. 0141-2570099

वस्तुतः जयपुर, केन्द्रीय संग्रहालय एक वृहद् प्रादर्श संचय का मालिक हैं। यह कलात्मक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, अमूल्य विरासत को अपने में समेटे हुए है। यह स्वयं एक आदर्श हैं, पथ प्रदर्शक हैं और यह विगत परम्परागत विरासत की सक से हमारे वर्तमान व भविष्य को निर्देशित करने का सफल प्रयास कर रहा है। सम्प्रति, यह संग्रहालय देश व राज्य के सुप्रसिद्ध संग्रहालयों में परिगणित किया जाता है। यथा-

या सम दूजा संग्रहालय, राजस्थान में दृष्टि नहीं आवै।
यांकि उपमा राजस्थान में, याहै दीजत मौहे सुहावै।।

संदर्भ

1. समन्दर सिंह खंगारोत 'सागर', आकृति (त्रैमासिक), राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, अ□टूबर-दिसम्बर, 1995, पृ. 31

**Dr. Shashi Goel**
Co-editor
Atishay Kalit

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# THE STATUS OF WOMEN IN ANCIENT INDIA

In Indian society, the position and status of women has been continuously changing in the course of time. The changes in socio-political conditions too has affected the status of women so it is quite necessary to assess the position and status of women in ancient time.

Criminal victimisation of the mother community in all walks of her life and helplessness of the protecting agencies to eradicate the same, have today created an alarming situation in many countries of the world. While analysing the historical records of our country, it throws light on the position of women in different ages and evidently proves that deterioration in the status of women and their criminal victimisation are the outcome of the influence of later Vedic literatures like **Smriti, Sutra, Puranas** and its religious injunctions. Moreover in the later **Smriti age** the new conventional usages arose from the exigencies of political and other situations resulting in the increasing women victimisation.

According to Indian tradition, since the inception of society women hood has been respected, though occasionally we find derogatory references to women. In **Manu Vaivasvata Period** in 3100, he feels a women should not be independent in any age. It is good for her and the society. There is a widespread misconception regarding the true status of women in ancient Indian society. It is mainly due to deplorable ignorance of texts of the **Veda, Upanishad and Smriti** in which are to be found the laws, custom and traditions, which define the true status of women in early times.

The most authoritative text on the subject is the **'Rigveda'** which contains the seeds and sources from which the entire course of the Hindu thought through the ages has been derived and flew in so many streams. In **'Hindu Puranas'** women power was treated as **Sakti** which destroyed the invincible **Mahisasura**. Even **God Rudra** is regarded as half-man and half-women, i.e., as **Ardha-Narishwara**. **'Manu'**, the Hindu law giver, also declared that where women are honoured, there the gods are pleased, where they are not honoured all works become fruitless[1].

Again regarding honour of women in ancient age, it was said, "One Acharya

excels ten Upadhyayas in glory, a father excels a hundred Acharyas in glory, but a mother excels even a thousand fathers in glory[2]. **Ma Saraswati** Goddess, regarded as the highest of learning and **Devi Mahatmaya** declares : "All forms of knowledge are aspects of thee and all women throughout the world are thy forms."

The women in Vedic and Upanishadic age enjoyed equal status and opportunities with man in all vistas of society. They were eligible for **Upanayana** or initiation and Brahmacharya or study of the Brahma knowledge.

But in a later period education of women was sadly neglected and women lapsed into illiteracy and superstition. It was observed, "The discontinuance of **Upanayana** and its equation with the marriage ritual has the most disastrous consequences upon the social and family status of women. The privilege of **Upanayana** has been consistently denied to Non-Aryans since early time, and when it was withdrawn from women, their status was automatically reduced to that of the Sudras. At about 300 B.C. it began to be argued that women were ineligible for vedic studies like Sudras[3]."

Entering into a detailed analysis in Indian History and Puranas, we find that it carries glaring examples of unique achievements of women in all fields of learning, statesmanship and velour. Great women like **Sita**, **Savitri, Kunti, Draupadi** and **Anusuya** are examples of women of special tolerance and high qualities, **Gargi, Lilabati, Arundhati** and **Matrayi** are famous as scholars, **Queen Ahalya Bai** and **Razia Sultana** for good administrative ability and daring warriors like **Rani of Jhansi, Laxmi Bai** have become immortal in our history. But though the passage of time women who were respected and worshipped as intonation of **Sakti** were victimised in all walks of their lives. This study attempts to search the real position of women from the ancient period and so ascertain the origin of different offenses against women and to suggest suitable measures to root out the same from our society.

It is believed that the flood and **Manu Vaivasvata Period** in 3100 B.C. was followed by the **Yayati Period** : 3000-2750 B.C.; the **Mandhatri Period;** C. 2750-2550 B.C.; the **Parsurama Period,** C. 2560-2350, B.C.-1950 B.C., **the Krishna Period,** C. 1950-1400 B.C.; and the **Bharat War** was settled to be held in C. 1400 B.C[4].

In spite of different controversial writings the **Vedic Period** which was placed between 2500 B.C. to 1500 B.C. was followed by the **Upanishad Period** of 1500 B.C. to 500 B.C[5]. and **Smriti** and **Purana Period** placed in between 500 B.C. to 600 A.D[6].

In **'Rigvedic Society',** the position of women was fairly satisfactory. As the

organization of the family was patriarchal, a male off spring was looked with more favour than the female off spring. Despite the attitude of indifference towards female child, a daughter was entitled to the privileges of a son. she was educated like a boy and had to pass through a period of Brahmcharya. Instances are not unknown when we find distinguished poetesses, scholars, philosophers known for their learning and wisdom. Daughter enjoyed as much freedom as the son. There was no seclusion of sexes. The marriage of a girl used to take place at a fairly advanced age. Even in the matter of selecting the male, She exercised a good deal of influence. Very often there were love marriages which were later blessed by parents. The position of the wife was an honored one in the family[7].

Women enjoyed equality with man in religious matters too. Many religious rituals and sacrifices could not be performed without the participation of one's wife.[8] In Vedic Age the wife in a family enjoyed full religious rights with her husband and regularly participated in religious ceremonies with him. In the absence of wife, such performance of religious ceremonies were considered invalid and she was given the position of full partner in life, and this system also continued in **Upanishadic Age**.

'Sati' was not in vogue at all. The childless widow could, if she like, contract another marriage, either regularly or under the custom of 'Niyoga' **'V.M. Apte'** holds that remarriage of widows was permitted in certain circumstances, though there is no such reference in **Rigveda**[9].

The Rigveda provides abundant evidence pointing to the fact that women were equal of men as regards access to a capacity for the highest knowledge, even the knowledge of the Brahma. They enjoyed considerable freedom in political, social and educational fields and enjoyed highest status and prestige in society. **Prof. Altekar** picturised vividly in **Women's Position in Hindu Civilization that Women Participated in Politics in Vedic and Upanishadic age on equal terms with men.**

No unnatural distinction was made between the sons and daughters. Even the girls were entitled to undergo the **Upanayana** ceremony and studied Vedic literature. The women of this era have maintained high standards of learning as is evident from the glaring examples of women of highest learning since Ancient Vedic age.

In **'Smriti Age'** after 500 B.C., there was deterioration in the status of women. Though the Hindu Sastra kept mother power in a high position, it was described by Manu, "Day and Night women must be kept independent by the males (of) their families, Her father protects (her) in childhood, her husband protects (her) in youth and her sows protect (her) in old age, a women is never fit for independence[10].

Purana and Sastra described – **"Abala-durbala"** + "**Durbalasya-Balamraja"** + **"Balanam Rodanam Balam"**, **"Binasraya Nabartanti Kabita Banita Lata",** etc., and likewise the society treated women as the weaker sex, dependent on male and subordinate sex. In this age the suppression of women started in larger scale due to influence of the religion, caste system, custom and tradition and they are victimised in all walks of their life[11].

In Vedic period women on whole occupied position of honour, respect and equality with men **Rigveda,** the meditative master mind product, is the excellent projection of the highest religious truth of thoughts, which dawned on the saints and seers as a result of their contemplation in a life of complete asceticism and penance, shows evidence pointing to the fact that women were fully the equals of men as regards access to and capacity for the highest knowledge of **Brahma.** The Veda contains hymns which were revealed even by the women seers, who were called ***Rishikas, Brahmavadinis.***

The position and status of Indian women in the Vedic age was much higher than in any other ancient society like that of **Greece and Rome**[12]. the general position of a wife was of high dignity and she enjoyed peace, happiness and prosperity in family along with the members.

The status of women in family being the same as that of men, many women proved themselves as famous scholars and authors, and took part in the industrial life of early times. They were manufacturing arrows and bows, making baskets, weaving cloth, and participating in outdoor agriculture work. Since women were following many outdoor professions, there was actually no Purdah system in early society. But women as kings and political authority do not figure in the early vedic society in view of frequent wars there was patriarchal society with male-domination. The society in the Epic period was completely patriarchal and patrilineal, so the husband was considered the senior partner in the home. But the wife was also given the dignity in the household because of her vocation of motherhood. Her virtues were recognized. Her abilities in the maintenance of the household were appreciated. She was considered to be a true friend of man given by God. She was man's half, his religious partner, giver of joy and sons. In this period, position of women was on the whole satisfactory. During this period Aryans were engaged in the ardous task of political expansion and women in this age in India and in Homeric Greece were actively co-operating with them. Draupadi presents to us an ideal of womanhood who was learned, iron willed, revengeful, intolerant towards undignified behaviour, loving and affectionate and also forgiving. She was a perfect wife, wise counselor and dear

companion to her husbands.

Among the other learned ladies of the **'Epic Period'** we may name Gandhari, Kunti, Kaushalya, Sumitra, Kaikeyi, Gautami, Sulabha, Mandodri, Trigate and many others. [13]

Scholars believe that in ancient India, the women enjoyed equal status with men in all fields of life[14]. However, some others hold contrasting views[15]. Works by ancient Indian grammarians such as **Patanjali**[16] and **Katyayana** suggest that women were educated in early vedic period[17]. Rigvedic verses suggest that the women married at a mature age and were probably free to select their husband[18]. Scriptures such as Rig Veda and Upanishads mention several women sages and seers notably Gargi and Maitreyi[19].

It resulted in denial of educational right to women, introduction of child marriage, and Purdah system in society. The property rights of women was withdrawn and widow remarriage completely abolished as a religious prohibition. A women who during Vedic and Upanishadic Age could once impart knowledge and wisdom to others, became a blind followers to whatever was preached to her under the religious colour and it was only possible due to lack of her education. She was taught that the husband is her only virtual God, and she should worship him to get the salvation from this life. While relying on this preaching, she was treated like a servant by the man. Again, the selfish male-dominated society classed her in lower status and placed her in a position not better than a ***Shudra*** (like untouchable class of society).

Hence it is true that besides the religious injunctions of **Smriti, Purana,** etc., discussed above are responsible for the deterioration in the status and position of women in society.

**Reference :-**

1. Manu Sruti (3.56)
2. Manu Sruti (2.145)
3. Alitkar, Anant Sadasiv, Article Published in "Ideal and position of Indian women in social life", "Great women of India" (Calcutta, 18 Hem Naskar road, Calcutta, 10, 1982) P. 34
4. Pulaskar A.D., "Historical Traditions", "The Vedic Age", (Bombay, Bharatiya Vidya Bhawan, 1988), pp. 275 to 332
5. Meheta Hasa – The women in Ancient India – Indian women, (Delhi, Butala & Company, B. Jawahar Nagar, Delhi) p. 95
6. Ibid. "Great women of India", p. 32
7. Apte, V.M. Social and Economic Conditions – Essay in History and Culture of Indian people, Vol – I, p. 393

8. Kapadia, K.M., Marriage and family in India, p. 251
9. Apte, V.M. Social and Economic Conditions in Vedic age – Essay in History and Culture of Indian people, Vol – I, p. 393. also referred by Chattopadhya Sudakar, Social life in Ancient India, pp. 114-115
10. Manu Smriti (9.2-3)
11. Tripathy, Prabhat Chandra, Crime against working women, APH publishing house, New Delhi, 2000, pp. 22-24
12. Ibid, Majumdar Ramesh Chandra "Ideal and position of India women in domestic life" – Great women of India, (Calcutta, 18 Hem Naskar road, Calcutta 10, 1982) p. 5
13. Majumdar Maya, Social Status of Women in India. Dominant Publishers and Distributors, New Delhi, 2004, p. 13
14. Mishra, R.C., Rowards Gender Equality, Author press, 2006, https://www.vedamsbooks.com/no43902htm.
15. Purthi, Raj Kumar; Ramesh loori Devi and Ronita Prtithi (2001) Status and Position of Women : In Ancient, Medieval and Modern India. https://www.vedamsbooks.com
16. Varttika by Katyayana, 125, 2477

**Dr. Jyotsna Bakshi**
Former India Chair Professor (2006-2009)
University of World Economy and

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# INDIA'S CONTACTS WITH CENTRAL ASIA FROM REMOTE PAST TO THE PRESENT

Maturing of civilizations can not be an isolated phenomenon. Indigenous traditions may gain from the influences of the neighbouring regions. Interaction of cultures and sharing of experiences and experiments may lead to further blossoming and development of civilizations. In contrast, self-imposed isolation may lead to stagnation and degeneration.

India's contacts with Central Asia from Remote Past to the Present situated on the cross-roads of major empires and trade routes, Central Asia has been the meeting ground and an area of cross-fertilization of diverse cultures. "Unity in diversity" is also the fundamental principle of Indian culture and nationhood. Over the millennia India has also been the meeting ground of diverse cultures and races. She has also constantly sought to synthesize diverse elements while maintaining a distinct identity of her own.

Following the disintegration of the former Soviet Union in late 1991, five independent states have emerged in Central Asia. These are, Kazakhstan, Kyrgyzstan, Tajikistan, Turkmenistan and Uzbekistan. They form a part of India's "extended neighbourhood." India shares with them strong bonds of history and culture and is currently nurturing multi-faceted cooperative ties with them in various fields.

**India and Central Asia through History**

India and Central Asia have always maintained extensive and deep civilizational contacts spanning thousands of years. The mountains that separate Central Asia from the Indian subcontinent have never been an insurmountable barrier in the way of interaction of the peoples of the two regions. Along the ancient caravan routes across the mountain passes between the Indian subcontinent and Central Asia moved peoples, goods, ideas, philosophies, beliefs, preachers, mendicants, migrants as well as warriors and adventurers. A deep cultural bond always existed between the peoples of India and Central Asia. And in the course of centuries a dense cultural and ethnic intermingling and intermixing took place.

The peoples of the two regions were in touch with each other from the very dawn of history. The first highly developed and sophisticated civilization in India

was the Indus Valley civilization that reached a high level of maturity more than five thousand years ago. The archaeological excavations have proved that the peoples of Indus Valley were well-versed in the art of metal smelting and produced ornaments in-laid with precious and semi-precious stones. The Lapis Lazuli used in the Indus Valley ornaments could only be obtained from Central Asian region of Gornobadakhshan (Pamir region). Thus, the Indus Valley people traded with neighbouring regions, including Central Asia. An Indus Valley site has been discovered on the banks of Amu Darya (River Oxus). Indeed, India and Central Asia form part of a single civilizational space from the very beginning.

References to the Central Asian tribes and regions are found in the ancient-most Sanskrit texts of India like Vedas, Puranas and the epics of Ramayana and Mahabharata as well as other classical works of Sanskrit literature. In these texts Central Asia was referred to as 'Uttar Kuru'. The arctic region was called 'Somagiri'.

According to Zend Avesta, the peoples of Iran, Turan (Central Asia) and India had common ancestors . According to the Puranic traditions ('Bhagwata Purana') the patriarch figure of the Tartars, 'Ayu' or 'Ay', had common Indian-Central Asian ancestry. Extensive references are made to Central Asian tribes in ancient Indian literature. The tribes like the Shakas, Hunas, Kambojas, Tusharas, Parasikas (Sassanians), Paradas, Bahlikas (Bactrians) and Pahlavas have figured in the history of both India and Central Asia.

The world's oldest university existed in Taxila, in north-west India since 7th century B.C. It is believed that it was at Taxila that the world's first grammar book -Panini's 'Ashtadhyayi' was written in Sanskrit language. Taxila was located on the trade routes between India and Central Asia. Understandably, the Taxila University attracted scholars and students from Central Asia also.

The great Emperor Ashoka in the 3rd century B.C. sent his ambassdors of good will in various directions to spread the Buddhist message of love and compassion, including in the direction of ancient Bactria comprising northern Afghanistan and southern parts of present-day Uzbekistan as well as the Tarim Basin in Xinjiang in eastern Central Asia.

Kushan Empire in the 1st and 2nd century A.D. was a joint Indo-Central Asian construct encompassing parts of Central Asia and northern India. Purushpur (modern-day Peshawar was the capital of the Kushanas. Mathura was an important centre of art and culture. Kushanas were a Central Asian tribe called Yuezhis or Tusharas/Tukharas. As the Kushan Empire brought Indian and Central Asian regions under one political rule, a unique opportunity emerged for the peoples of the two regions to come together which resulted in tremendous expansion of trade

and cultural ties. Kanishka (the end of the 1st and early 2nd century A.D.) was the greatest of Kushan rulers. He adopted Buddhism and played a major role in the spread of Buddhism in Central Asia. During the reign of Emperor Kanishka, the 4th international Buddhist Assembly was held in Kashmir. In the assembly under the leadership of eminent Buddhist thinker and philosopher, Nagarjuna, the doctrine of Mahayana (big wheel) Buddhism was finalized. It was this Mahayana Buddhism that spread in Central Asia, China and other eastern countries. In contrast to the earlier version of Buddhism known as 'Hinayana' (small wheel), Mahayana Buddhism popularized the making and worshipping the idols of Lord Buddha. The biggest contribution of the Kushan period to Buddhism was the development of the art of Buddhist sculptures combining Indian, Greek and the Central Asian influences. This genre of sculptures was called the 'Gandhar School of art'. Along with trade, Buddhist philosophy and art travelled on the ancient Silk Routes and spread in Central Asia and adjoining lands .

The archaeological excavations in the Amudarya valley in Southern Uzbekistan, in Afrasiab on north-eastern edge of Samarkand and some other places in Uzbekistan, in Turkmenistan, Kazakhstan, Kyrgyzstan and in Tajikistan add further evidence of the existence of links between ancient India and Central Asia since antiquity. Extensive excavations have been carried out in Kara Tepa, Fayaz Tepa, Dalverzin Tepa, Yer Kurgan, Ak-Beshin, Kranayerezka and Isyk-Ata that have unearthed a huge treasure of Buddhist monuments . A 13-meter long ancient statue of 'Sleeping Buddha' has been restored and is proudly displayed in the Museum of Antiquity in Dushanbe, the capital of Tajikistan. After the destruction of the two giant Buddha statues at Bamyan (Afghanistan) by the Taliban in 2001, the 'Sleeping Buddha' may be the biggest statue of Lord Buddha in the region.A rich discovery of Buddhist texts and archaeological remains have also been discovered in eastern Central Asia -in Xinjiang .

The most exquisite find in Uzbekistan is the white limestone "Buddha with monks" excavated from Fayaz-tepe, old Termez:

(Buddha with monks in white limestone, Fayaz-tepe, Uzbekistan)

Uzbek archaeological expeditions by Khamza Fine Arts Research Centre in Dalverzin Tepa in 1960, 1962, 1967 and 1990 unearthed Buddhist temple and remains of monastery belonging to the 1st century A.D. The sculptures discovered showed Indian imprint. At Dalverzin Tepe gold objects were discovered with Prakrit (ancient Indian language) inscription in Kharoshthi script. The golden objects seem to have belonged to some rich trader . According to one explanation the famous Uzbek city on the Silk Road, Bukhara, has got its name from the Sanskrit word 'Vihara' meaning the Buddhist monastery.

Many Buddhist scholars and monks visited Central Asia and China. They spread the message of Buddha and translated and interpreted the Buddhist texts. The name of Kumarajiva may be specially remembered, who lived in the city of Kucha in the north of Tarim Basin (in Xinjiang) in 4th century. He studied in Kashmir and possessed great literary talent and knew several languages. Craftsmen accompanied the Buddhist monks to make paintings and sculptures of Buddist divinities. Materials also went from India for these creations. Monks carried images along with texts to serve as models for the making of new images .

The list of Buddhist sites mentioned here is not exhaustive. Many more Buddhist sites have been discovered in Central Asia. No doubt, there is a need for further research and archaeological excavations to bring to light the lost pages of common historical legacy of India and various Central Asian countries. Recently reports have appeared regarding the discovery of large number of Buddhist manuscripts in the caves in Bamyan Valley in Afghanistan and Gilgit in Pakistan occupied Kashmir. It is believed that they include the manuscripts of Bactrian Buddhist texts . This discovery reinforces the necessity of further research in this field.

Besides Buddhism, archaeological excavations have also brought to light some Hindu gods in the region, for instance, the panel of Hindu Lord Shiva dating 8th century was excavated at Piandjikent in Tajikistan .

The southern branch of the historic East-West Silk route connected India and Central Asia. This route was also called 'Cotton and precious goods route'. A flourishing trade continued between India and Central Asia on this route. Cotton, spices, incense, ivory artefacts, indigo and precious and semi-precious gems were carried from India to Samarkand and Bukhara through Termez, which is an Uzbek city bordering on Afghanistan . Most important item of trade from Central Asia was horses. Every year thousands of horses were imported from Central Asia to India.

Central Asian horses were highly valued in India . Central Asia also exported to India silk, velvet, carpets, satin, knives, armours, shields and fruits and dry fruits.

The game of chess, fables and folklore also came from India across southern branch of the famous Silk Road that connected India with Central Asia. It is universally known that concept of zero and decimal system were developed in India and from here they were taken to the West by Arabs.

Since ancient times India was viewed as the land of exotic luxuries and riches. From time to time, it attracted many a warrior and adventurers. In the beginning of 11th century, in a situation of crisis and turbulence wars of aggression, loot and plunder were waged against India. Mahmud Ghaznavi made several forays for loot and plunder in India. At this time, the eminent scholar and historian Al-Beruni, from the modern-day Uzbek province of Khorezm also came to India. He conducted an objective and scientific study of India. Al-Beruni was a serious scholar. He studied Sanskrit language translated Sanskrit texts and on the basis of extensive study of Indian society and interaction with a large number people wrote an authoritative book on Indian history named 'Tarikh al Hind'.

(Famous historian, Al Beruni)

In the 13th century when Central Asia witnessed a period of wars and unprecedented destruction of cities and settlements following the conquest of the region by Chingiz Khan of Mongolia, many prominent families of Central Asia found refuge and sanctuary in India. Central Asians at this time were attracted to India like the iron fillings are attracted to the magnet.

Muslim Sufi saints and 'Dervishes', who came from Central Asia, found a fertile soil in India for disseminating their message of love, equality and compassion. Sufism seems to have borrowed beliefs from the Buddhist tradition, as well as other pre-Islamic faiths in Central Asia. Sufism made the transition from old faiths to the new Islamic faith more palatable and smooth. Sufism provided the resilience and space to the new faith. It provided room for individual experience

and experimentation of the glory of the God. Sufism found a fertile ground in India already experiencing an equalizing and liberating devotional or 'Bhakti' movement. As a result of Indo-Central Asian interaction the composite Indo-Islamic culture flowered in multiple fields. Amir Khusrau -a famous poet and musician in Persian and Hindi languages in 14th century India also known as Khusrau Dehalvi, was the finest representative of this composite culture. He was a man of great and versatile talents in music and poetry.

An extensive building activity began in Central Asia in the 14th and early 15th century. Architects, stone masons, sculptors and artisans were brought from India and Persia by Timur Lane in his campaigns for conquest. They contributed when magnificent buildings were built in Samarkand at this time. The architectural styles in India and Central Asia tended to intimately impact on each other.

Zahiruddin Muhammad Babur, who was born in the Uzbek city of Andijan in 1483, established control over Kabul in 1504 after unsuccessful attempts to wrest control of Samarkand. In 1526, Babur defeated the much larger army of the Delhi Sultan Ibrahim Lodi in the battlefield of Panipat, north of Delhi with better strategy and the use of artillery. Babur laid the foundations of a new dynasty, the Mughal dynasty. Jawaharlal Nehru called Babur a "Renaissance Prince" for his versatile talents and love for learning, arts and good living. Memoirs of Babur or 'Baburnama' are not only a valuable book of great historical significance, but also a rich piece of literary work in Uzbek language. Babur's illustrious grandson Emperor Akbar of India got an illustrated copy of Baburnama prepared with the help of Indian painters among others. Emperor Akbar exhibited a rare insight and understanding of the Indian mind and psyche and further consolidated the foundations of the Empire by following a policy of tolerance towards plurality of faiths. He established a truly secular polity. Emperor Akbar's son Emperor Jahangir from Rajput queen Jodhabai and grandson Emperor Shahjahan continued the same policy and further extended the Empire. The grandeur and the cultural brilliance of the Indian Empire were unparalleled in the world at that time.

The impact of Bukhara and Samarkand architecture and the hands of artisans and artists form Central Asia could be seen in the beautiful buildings built in India in Indo-Islamic architectural style by Emperors Akbar, Shahjahan and others. Taj Mahal, built by Emperor Shahjahan on the banks of river Yamuna in Agra in memory of his beloved wife Mumtaz Mahal remains to this day the most beautiful building in the world. Taj Mahal is a tribute to eternal love and is like poetry in white marble.

Delhi during this period attracted talented people -scholars and artists-- from

Central Asia and other regions. In fact India at this time was the centre for attraction for all those who were in search of opportunity and patronage. Intermixing of cultures and peoples led to the development of a new popular language in India called Urdu, a language of considerable refinement and polite conversation. This period was marked by the flowering of a composite culture in India exhibiting incredible exuberance, richness and sophistication. The glory and grandeur of the Indian royal court was unrivalled in the medieval world. Remarkable achievements were made in the fields of art, literature, music and dance. The country enjoyed enlightened and liberal administration that was based on the policy of tolerance and secularism. The country enjoyed unrivalled economic prosperity. There was all-round development and growth of urban culture and prosperity.

There has been a dense overlapping of mutual cultural influences between the two regions in a number of fields. It is not possible in the present article to give all the details. Suffice to say that while much has been done to study the deep historical ties, further detailed studies are needed to fill many gaps.

Till 19th century Indian trade was in the centre of the world trade. Indian traders based in the towns of Sindh and Multan carried on extensive trade with Central Asia . The Indian traders were the natives of Shikarpur in Sindh. The city of Bukhara on historic Silk Road-also called 'Bukhara Sharief' (noble Bukhara) as a mark of respect and appreciation-was a major centre of trade for several centuries in the medieval period. A sizeable Indian community of traders lived in their own caravanserais in Bukhara. Cotton cloth and Kashmiri shawls were popular items of export from India. The industry of the Indian community greatly impressed their Central Asian counterparts. Indian business and trading community had developed a highly sophisticated system of payment and credit in the pre-industrial period. Promissory notes or Bills of exchange called 'Hundis' issued by great business and financial houses of India were honoured not only everywhere in India, but also in Iran, Kabul and Tashkent and other places in Central Asia.

The trade declined in 19th century when Central Asia came under the Russian Empire and traditional Indian manufacturers and handicrafts suffered as a result of the British colonial policy.

Imperialism prevented direct contacts between the two regions in 19th and first half of 20th centuries

It may be emphasized that the interaction of peoples and cultures between the two regions that had continued unabated since times immemorial was discouraged during the colonial regimes. The two biggest imperialist powers -Tsarist Russia and Britain were locked in the famous "great game" in the second half of the 19th

century and the early 20th century for control over Afghanistan and Central Asia. Finally the two imperialist powers -Russia and Great Britain-- decided not to cross ways and turned Afghanistan into a buffer state that separated the British Indian possessions and the Tsarist possession of Central Asia or the Western Turkistan. According to the treaty of 1907, it was agreed that the forty km wide Wakhan 'pan handle' of Afghan territory would be separating the south eastern border of the Tsarist Empire in the Gorno-Badakhshan region from the northern-most regions of British possessions in India. The success of the October 1917 Communist Revolution and the birth of the first Socialist state in the world-the Soviet Union, aroused apprehensions in the British government in India of the contagion of the revolutionary ideas from the Soviet Union. They took all the measures to seal the borders with the Soviet Union to prevent the flow of men and ideas. Similarly, the Soviet Union also raised the 'iron curtain' to protect the new-found gains of the communist revolution. It was only during the WWII, when both the Soviet Union and Britain were war-time allies that the Soviet officials were allowed to visit Calcutta for war-time purchases.

**India Wins Freedom: Revival of Old Contacts**

The emergence of independent India opened the way for reviving old contacts. Independent India refused to be a camp follower of any one of the two power blocs. It decided to follow a policy of non-alignment and friendship with all. In the first Inter-Asian Conference organized in Delhi in 1947, the Central Asian republics of the former Soviet Union were also invited. With the warming up of Indo-Soviet relations, Cultural ties were revived. Indian films became very popular in Central Asia and the Soviet Union in general. Prime Minister Nehru visited Uzbekistan and Turkmenistan in 1955 during his first visit to Soviet Union. Nehru again visited Uzbekistan in 1961.

Even during Soviet period, Tashkent was accorded a pride of place in forging links with the eastern countries. Thus, the Tashkent peace conference between the Prime Minister of India Lal Bahdur Shastri and the President of Pakistan Ayub Khan was organized in January 1966 with the Soviet good offices. Unfortunately, Prime Minister Shastri died of massive heart attack after signing the Tashkent Declaration. Prime Minister Shastri's statue and bust and the school and street named after him in the city of Tashkent form an important link in the Indo-Uzbek saga.

All over Central Asia great Indian leaders like Mahatma Gandhi, and Jawaharlal Nehru and literary figures like Rabindranath Tagore are held in very high esteem. India has an image of not an ordinary country but a civilizational state.

**Establishment of Direct Ties**

The emergence of newly-independent states in post-Soviet space made it possible for the governments and peoples of India and Central Asia to establish direct relations. Diplomatic relations were established between India and all the Central Asian states. President Islam Karimov of Uzbekistan -the most populous and centrally located country of Central Asia-- chose India for his first foreign visit on the eve of independence in August 1991. The exchange of high level visits has continued between the countries of Central Asia and India. In May 1993 Indian Prime Minister P.V. Narasimha Rao paid official visit to Uzbekistan and Kazakhstan. In January 1994 President Karimov paid a ceremonial visit to India. President Karimov again visited India on May 1-3, 2000 and April 4-6, 2005 and again in 2010. In 2003, Prime Minister Atal Bihari Vajpayee visited Tajikistan. In April 2006, Prime Minister Manmohan Singh of India visited Uzbekistan. Indian President Pratibha Devi Singh Patil visited Tajikistan in 2009. Prime Minister Man Mohan Singh has also visited Kazakhstan several times. Besides the summit meetings, senior ministers of India and Central Asia have been regularly exchanging visits. India and Central Asian countires have shown interest in boosting cooperation in modern and upcoming economic sectors. These are, Information Technology, development of small and private enterprise, fuel and energy sector, geology and mineral resources, agricultural research, textile and pharmaceutical industries, etc. During his visit to Tashkent in April 2006, Prime Minister Manmohan Singh formally inaugurated Jawaharlal Nehru Uzbekistan-India Centre for Information Technology (JNUICIT) in Tashkent. India has opened Information Technology centres in all the Central Asian states. They are extremely popular. India has also established its cultural centres in various capitals of Central Asia. Indian Chairs have been set up in the Universities in Tashkent and Kyrgyzstan. An intensive cultural and academic exchange programme is regularly going on between India and various countries of Central Asia.

India is helping in the training of Central Asian professionals in various fields of Industry and management under Indian Technical and Economic Cooperation (ITEC) programme.

**Commonality of Interests, Ideas and Values**

India and Central Asian countries are not only bound together by deep-rooted historical ties, but also by a remarkable compatibility of interests on a vast spectrum of contemporary issues. All these countries are deeply committed to the ideal of secularism and separation of religion from politics. They share a modern and forward-looking world view and practical and problem-solving approach and are strongly opposed to religious extremism and obscurantism of all varieties. Being

a land where the adherents of all the major religions of the world live together speaking in different of languages and dialects representing a colourful mosaic of races and rich and diverse cultural forms, the basic underlying idea of India is 'unity in diversity' or tolerance of plurality. In fact, the idea of 'unity in diversity' is relevant for all these states of Central Asia also.

All these countries are interested in promoting economic development while maintaining stability. They have the common goal of nation and state building and ensure scientific and technological progress. They are committed to non-interference in one another's internal affairs and respect for unity, territorial integrity and vital interests of the states of the region. All the Central Asian states support India's candidature for the permanent membership of the UN Security Council. India and Central Asian states have also joined hands in combating international terrorism. With all these countries , India has set up Joint Working Groups (JWG) on Combating International Terrorism on bilateral basis). All these countries border on or are located in close proximity of Afghanistan, where about 90% of the world's poppy crop used for illicit drug production is grown. Therefore, all these countries have a common interest in controlling drug trafficking emanating from Afghanistan. They share common interest in peace and stability in the entire region.

**Future Prospects**

It is in the common interest of the people of India and Central Asia that peace and stability is maintained in the entire region and the these countries join hands in partnership for prosperity. The deep-going historical contacts between the peoples of these countries and two regions of Central Asia and South Asia in general, give hope that in future also they will further enhance mutually-beneficial multifarious cooperation.

**References:**

1. Zend Avesta states that the ancestors of Iranian, Indian and Turanian people were the three sons of Tratoria, namely, Arya, Sairimia and Tura. Source: “http://en.wikipedia.org/wiki/Ancient_India_and_Central_Asia”.
2. Kogi Kudara (Ryukoku University, Kyoto), “A Rough Sketch of Central Asian Buddhism”, *Pacific World* at http://www.shin-ibs.edu/pdfs/pwj3-4/06KD4.pdf.
3. R.C. Agrawal, “Recent Excavations in Uzbekistan and India’s Contact with Central Asia” in the book (Ed.) N.N. Vohra, *Culture, Society and Politics in Central Asia and India*, Shipra and India International Centre, Delhi, 1999, p. 35.
4. http://en.wikipedia.org/wiki/Ancient_India_and_Central_Asia.
5. R.C. Agrawal, no. 3, p. 36.
6. Radha Raina, *Glimpses of the Past, Cultural Rhythms, India and Central Asia*, External Publicity

Division, Government of India, New Delhi, 2002, p.39.

7. Kogi Kudaran no. 2.
8. Radha Raina, no. 6, p. 25.
9. Ibid. p. 57.
10. (Ed.) Surendra Gopal, *India and Central Asia: Cultural, Economic and Political Links*, Shipra Publishers, Delhi 2001.
11. Scott Levi, "The Indian Diaspora in Central Asia and Its Trade 1550– 1900" Leiden: Brill Academic Publishers, 2002.
12. Claude Markovits, The Global World of Indian Merchants, 1750-1947: Traders of Sind from Bukhara to Panama, Cambridge University Press, 2000.
13. Jawaharlal Nehru, *The Discovery of India*, Indian Council for Cultural Relations, 1991 edition, p. 181.

**Dr. Rita Pratap**
(Chief Editor)
Ex-Head of the Deptt.
Drawing & Painting,
University of Rajasthan, Jaipur

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# THE TEMPLE OF ANGKOR WAT
(CAMBODIA) (1080-1175 AD)

Angkor Wat (Cambodia) is known to be world's largest religious monument. In December 1992, Angkor was declared a 'World Heritage Site. Angkor Wat, the 'city (which became a) pagoda', was not only the grandest and most sublime of all the Khmer temples but also a city in its own right.

This temple was built during the reign of Suryavarman II in the 1st half of 12th Century, both as the capital and state capital dedicated to Vishnu. It is a completely realised microcosm of the Hindu universe, culminating in the five peaks of Mount Meru.

Plate-I View of Temple Angkor Wat

The total area is almost 200 hectares – a rectangle of 1.5 km East – West by 1.3 km North – South: the largest temple at Angkor. It is surrounded by a huge fortified moat generally found filled with water even now. **(Plate-1)**

Two causeways at West and East cross the 190 meter wide moat to the outer enclosure bounded by a laterite wall of 1025 meter by 802 meter. Because of Angkor Wat's unusual orientation the west *Gopura* of the outer enclosure is by far the largest of the four.

Within the 82 hectares of the outer enclosure, the temple itself stands in the middle on a terrace measuring 332 x 258 meter nearly 9 hectares. The remaining 9/10 of the area was taken up with the city, including the royal palace.

Angkor Wat has high classical style of Khmer architecture. Fully developed conical towers with curved profile, a pyramid of three levels, each one enclosed by a well developed gallery with four *gopuras* and corner towers. Galleries wider and with half galleries on one side. Concentric enclosures connected by axial galleries *Nagas* with head-dress, *Naga* balustrades raised off the ground on short square columns. Invention of cross-shaped terrace, Richly carved lintels and other

decorations. Some 600 meters of narrative bas-relief and nearly 2000 Apsaras. The central shrine of Angkor Wat is one of the largest, its cella has internal dimensions of 4.6 meters by 4.7; the pedestal of statue being approximately the width of the door, about 1.6 meters square.

The temple was built by durable material like brick, laterite and sandstone. It is due to this reason that they have survived upto day. Over the Khmer Empire as a whole Hinduism dominated until the end of 12th Century, when it gave way to Mahayana Buddhism though not for long. Both came from India. It is likely that Indian Traders where the first to introduce their religion to Cambodia.

At sunrise the Angkor Wat Temple are silhouetted against the morning sky, in late afternoon they glow almost orange.

As regards the '**Discovery and Restoration'** it is said that French naturalist 'Henri Mouhot' published its literature from Paris and London in 1863, there after John Thomson working in Singapore was the first to photograph the monuments.

The Ecole Francaise d' Extreme Orient, founded in 1899, assumed responsibility for the conservation of the monuments, initially under the direction of 'Jean Commaille'. In 1916 he was assassinated by bringands. 'Henri Marchal' then succeeded him and for 20 years he toiled unceasingly often propping up monuments with cement beams, thereby preventing in further collapses. His love for Angkor Wat can be visualized when he moved there permanently in 1947 and died there in 1970. Later 'Georges Trouve' took over in 1931 but could only work for 4 years due to his tragic death. In 1937 'Maurice Glaize' an architect did some remarkable restorations.

In 1993, an International Coordinating Committee was established to oversee restoration at Angkor, presided by the Japanese and French ambassadors with a secretariat provided by UNESCO. Various teams from different countries like China, USA, Germany France, Indonesia, Italy and Japan worked under the committee to restore various temples at Angkor. The Khmers themselves have established APSARA (Authority for the Protection of the Sites and Administration of the Region of Angkor):

The scale of Angkor Wat enabled the Khmer to give full expression to religious symbolism. Some beautiful and famous creations of Bas – reliefs are given here which cover the exterior walls of Angkor Wat's third enclosure just above ground level.

**Battle of Kurukshetra (West Gallery, South section)**

The Hindu epic, the *Mahabharata*, describes the struggle between the Pandavas and the Kauravas, two rival clans who, in the climax, fought the Battle of Kurukshetra in northern India. This 49m section of the West Gallery relates the

battle, with the Kauravas advancing from the left and the Pandavas from the right. At the extreme North and South, the two armies march in an orderly fashion, with commanders riding horse- drawn chariots and elephants, and with musicians, but the action accelerates towards the centre. At the heart of the battle, the fighting is hand-to-hand and intense. As one walks along from the North, after 5m and near the top one can see Bhishma, the commander-in-chief of the Kauravas, laid dying on a bed of arrows at the end of the 10th day of fighting, 15m beyond this and also near the top, the brahmin Dronacharya, with his hair tied back in a topknot and wielding a bow, leads the Kauravas after Bhishma's death. 2m further on, near the bottom, Kama turns round in his chariot and tries to free the stuck wheel; as he does so he is killed by Arjuna, whom you can see 4m beyond and near the top, at the head of the Pandava army, firing an arrow from his chariot. His charioteer has four arms, identifying him as Krishna. one is now in the thick of the fighting, with hand-to-hand combat on all sides. With the lunging horse between Kama and Arjuna. From here on are the Pandavas, and 8m further Bhima rides an elephant and carries a shield bearing the face of Rahu. The battle ended after 18 days, with all the combatants killed signifying the end of that *yuga*, or world cycle. **(Plate-2)**

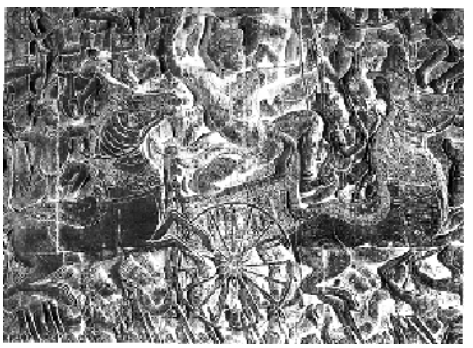

Plate-2 Battle of Kurukshetra

**South West Corner Pavilion**

The interior spaces available for carving are the four bays that each surround a doorway. The themes are principally mythological, with a bias to the *Ramayana* and the Life of Krishna (both, therefore, featuring *avatars* of Vishnu). For convenience, the scenes are described in anti-clockwise order, beginning with the West bay, on our right as one enters the pavilion:

***West bay, North side :*** A god-like figure stands in a doorway, surrounded by adoring women. One interpretation of this scene is when Shiva comes among the hermits disguised as a beggar to test their pride in having overcome the world of the senses (Shiva Bhikshatanamurti). The wives of the hermits, however, are all

attracted to Shiva, causing the hermits to be jealous. Another possibility, suggested by the reptile over the door, is the demon Ravana taking the form of a chameleon in order to insinuate himself into the women's quarters of Indra's palace. Against this, the reptile looks very much like a crocodile.

***West bay, over door :*** From the Life of Krishna: The child Krishna crawls on the ground, his foot tied to a stone by his foster mother Yashoda, who has had enough of his mischief. He uproots two trees (in fact two gods transformed into this state until they should see Krishna) by dragging the stone between them, and they transform back into gods. The scene is framed in a *naga* arch.

***West bay, South side*** - A 20-armed, multi-headed Ravana shakes Mount Kailasa, enraged when his path had been barred by Nadikeshvara on the instructions of Shiva who was spending time there with Uma.

***South bay, West side :*** Kama, the God of Love, at the request of Uma, fires an arrow at Shiva, in order to wake him from meditation. Shiva, who appears here as a hermit with beard and rosary, is understandably annoyed at being so disturbed, and kills Kama. At the bottom, next to the image of him firing the arrow, one can see Kama lying dead, mourned by his wife Rati. According to the legend Kama was reduced to ashes and would have had no body. This representation shows the Khmer sculptors adapting the legend for their own purposes.

***South bay, over door:*** From the Life of Krishna: two consecutive scenes framed in a *naga* arch. At left, Krishna is seated with a hermit as a figure emerges from a wall of flames; at right, he fights with the same figure, who is unidentified. These scenes have not been linked to exact episdodes in Krishna's life and again may be a Khmer adaptation.

Plate-3 Valin on his death bed

***South bay, East side:*** From the *Ramayana*: The fight between the monkey brothers Valin and Sugriva. At the top Rama comes to the aid of his friend Sugriva by shooting Valin with an arrow. Below, Valin on his death-bed, mourned by his wife Tara (whom he had taken from Sugriva) and other monkeys. **(Plate-3)** In four panels below, next to the window, are more monkey mourners with wonderfully expressive faces and gestures.

***East bay, South side :*** Badly damaged bas-relief with Shiva seated in meditation.

***East bay, over door :*** Framed in a *naga* arch, a four-armed Vishnu receives offerings held on trays by different kneeling worhsippers, while *apsaras* fly overhead.

***East bay, North side:*** The water festival at Dvaravati. On two registers, heavily decorated boats are rowed across water full of fish. In the upper boat a chess game is in progress (one can even make out differences between the pieces on the board; in the lower boat ladies play with their children).

***North bay, East side :*** From the Life of Krishna: wearing a three-pronged headdress, and with his brother Balarama at his side, Krishna lifts Mount Govardhana to shelter herdsmen and their cattle from a torrential downpour sent by Indra (the cause of Indra's anger was that the people had mistakenly made a first offering to the Govardhana mountain rather than to him). Hermits pray in the forest of the mountain; cattle and villagers shelter below.

***North bay, over door :*** From the *Ramayana*: At Sita's request, Rama fires an arrow at a golden deer-the demon Maricha in disguise so that Ravana can abduct Sita while she is alone in the forest. The scene is framed in a *naga* arch.

***North bay, West side :*** The Churning of the Sea of Milk (partly damaged). At the bottom, over waves and fish, the *asuras* (left) and gods (right) pull alternately on the body of the serpent Vasuki, which is coiled around a pole which is Mount Mandara, to churn the ocean and eventually release *amrita*, the elixir of immortality. The mountain rests on the back of the turtle Kurma, an *avatar* of Vishnu, while Vishnu in human form controls the operation above with his leg around the pole. Indra sits on top of the pole to steady it, and the discs of the sun and moon appear on either side.

**Procession of Suryavarman II (South Gallery, West Section)**

Plate-4 King Surya Varman's Procession

In contrast to Angkor Wat's other bas-reliefs, this 94m-long military procession has an historical basis, and shows King Suryavarman II, the temple's builder, and his army. It begins, at the West edge, with two registers: in the upper is a royal audience before the army sets off, in the lower a procession. 10m from the start, on the upper register, is the king, seated (in keeping with his rank, larger than

any other figure) **(Plate-4).** Below, princesses and ladies of the court are carried in palanquins. On the other side of the king are his ministers and army commanders, and after the audience they rise and leave, descending steps to rejoin the army. From here to the end, the army marches in a single register, its 20 commanders riding war elephants, their rank identified by the number of parasols and name identified in small inscriptions. The 12th elephant, exactly halfway along the bas-relief, carries the king, again the largest figure, with 15 parasols. The royal standard, a small statue of Vishnu on *Garuda*, precedes him. Military processions continued just like this throughout the different reigns; the Chinese diplomat Zhou Daguan's description from a century and a half later reads, *"The ministers and princes are all on elephant back; from afar their innumerable red parasols can be seen. ....Behind them at last comes the king, standing on the back of an elephant and holding in his hand the precious sword."*

18m in front of Suryavarman II, the royal sacrificer or *Rajahotar*, a brahmin, rides in a palanquin among priests, just behind the Sacred Fire on its ark (each end decorated with *naga* heads). A band precedes this: note the horns, conch shells, flute and a gong carried by two men. The small group of standard bearers just in front is excellent. The head of the procession is taken by more troops. 8m before the end Prince Jayasimhavarman on an elephant commands a provincial contingent from Louvo (now Lopburi in Central Thailand) Sloping out of step in front of these disciplined troops is a rag-tag body of Siamese mercenaries, wild-looking and armed with spears; their commander also rides an elephant.

**Judgement of Yama, and Heavens and Hells (South Gallery, East section)**

To the East of the South *gopura*, the theme is the judgement of souls and their consignment to heaven or hell. 66m long, this section is significantly shorter than the preceding Army of Suryavarman II because of the way in which the temple's enclosures are successively set back towards the East, away from the entrance. In order to keep a single North-South axis, all of the North and South *gopuras* are aligned with the central tower. The restored ceiling shows how the space would have appeared originally. It was reconstructed based on a small piece of wood found there. The scene begins on two registers, with two processions, among them the great and good of Khmer society, carried on thrones and palanquins. They are confidently on their way to Heaven. Almost immediately, both levels rise to make room for "the way down to the realms of hell" at the bottom, where demons waste no time in beating the damned and dragging them towards their just punishments. one can see how emaciated the sinners are; after 20m they are menaced by Yama's

dogs - the hounds of hell - and beyond that they are savaged by wild animals, including a tiger and a beautifully observed Javan rhinoceros. Some of the damned are pulled along like cattle, with a cord through their nostrils.

The central register, after some 18m, shows the place where souls are judged by Yama, the God of Judgement and of the Underworld, 18-armed and riding his traditional mount, a buffalo. His two assessors Dharma and Chitragupta, 3m further on, listen without mercy to the pleas of sinners, who are thrown down into to Hell through a trapdoor. In fact, they are directed to sin-specific Hells - 32 of them, identified by short inscriptions. At this point, 22m into the bas-relief, the two upper registers end, and the 37 Heavens begin, considerably less interesting than the Hells, where the cruelty is extreme and the tortures imaginative. Supported by a frieze of *garudas*, the Heavens appear as a succession of palaces where not very much happens, and whatever delight the *apsaras* are supposed to give, they do it modestly. The inhabitants may, however, think it sufficient that they are spared the punishments below, some of which are spectacularly horrible.

Consider, for instance, the 3rd Hell, Vaitarani, the Hindu equivalent of the Iliver Styx, where demons use long pincers to pull out the tongues of their victims (5m after the trapdoor); the 6th, Nirucchvasa, where the damned are slowly cooked; the burning lake of the 9th, Taptalaksamaya; bone-smashing in the 10th, Ashthibhanga. In the next, Krakaccheda, gluttons are sawn in two, which seems a little out of proportion, while in Puyapurnahrada immediately following, "those who steal strong liquor, seduce others' wives, go near the wives of scholars" (a strange combination) are torn to pieces by birds of prey and thrown into a lake of slimy pus. In the 23rd Hell, Kalasutra, demons roast a man on a spit. The 29th is Cita, the frozen Hell, where one can see thieves shivering. Between 3m and 2m from the end is a particularly unpleasant punishment in the Hell of Maharaurava: the victims are tied to frames, and nails hammered into their entire bodies. The south east pavilion is undecorated.

**Churning of the Sea of Milk (East Gallery, South section)**

Taken from the *Bhagavata-Purana*, this great Hindu creation myth is here spectacularly realised in one continuous 49m panel. By pulling alternately on the body of the giant *naga* Vasuki, which is coiled around Mount Mandara, the gods and *asuras* rotate the mountain for 1,000 years to churn the cosmic sea - the Sea of Milk - and so produce *amrita*, the elixir of immortality. In the event, this cooperation between gods and *asuras* is shattered as soon as the *amrita* begins to be produced. The gods go back on their promise to give half to the *asuras*, who then try to steal it. The scene shown here, however, is the actual churning.

For the first 5m, the army of *asuras* is lined up with horses and elephants; the churning begins directly after this, and the first you see is a giant multi-headed *asura* - Ravana - holding the five heads of the giant *naga* Vasuki. Beyond him stretches the team of 92 *asuras* pulling in unison on the serpent's body. The cosmic sea is represented by a swirling mass of marine life, caught up in the turbulence, all enclosed by a second representation of the *naga*, lying flat on the bottom of the ocean, its heads rearing up at the far left. In the sky above fly large numbers of *apsaras*, created as part of the process.

As one walks along, variety of marine life, most real, some mythical can be visualised. It includes, among many kinds of fish, crocodiles, dragons. *nagas*, and turtles. Close to the centre of the panel the churning is so violent that many of them are sliced into pieces. In the middle, on the pillar-like Mount Mandara, four-armed Vishnu directs operations. He also appears below, as his turtle *avatar* Kurma, supporting the rotating mountain as it threatens to sink below the sea. The treatment here is full of incident and detail: above, a flying Indra helps to steady the top of the mountain, while close to Vishnu's discus are tiny images of the elephant Airavata and the horse Ucchaissravas, both created by the churning, like the *apsaras*. The presence of Ravana and Hanuman on either side is quite unique and not part of the original legend. It represents the Khmer combining the ancient Vedic legend with characters from the *Ramayana*.

On the North side, as one continues, 88 gods pull the *naga's* body in the opposite direction, commanded at the tail by a giant Hanuman. The last 5m of the bas-relief are taken up by the army of the gods.

**Vishnu's Victory over the *asuras* (East Gallery, North section)**

North of the *gopura* (which has an inscription dated 23 February 1702, describing the building of the now-ruined *'chedi'*, or tomb, just outside the gallery), the next 52m of bas-relief show Vishnu fighting an army of *asuras*. Hereboth the design and carving are markedly inferior to the preceding bas-reliefs. It was carved much later, between 1546 and 1564. As in the Battle of Kurukshetra and the Churning of the Sea of Milk, the composition focuses on the centre, with the *asuras* converging from both sides on Vishnu, who stands four-armed on the shoulders of *Garuda*. The most interesting part is a group of *asuras* riding giant birds 3 m beyond Vishnu, their legs wrappped around the birds' necks.

**Krishna's Victory over the *asura* Bana (North Gallery, East Secton)**

Turn the corner through the (uncarved) pavilion. The next 66m section is also poorly executed, and shows Krishna defeating the *asura* Bana. 6m from the start, Krishna appears eight-armed and riding *Garuda*, with Pradyumna (left) and

Balarama (right) carrying a plough. 3m beyond this, *Garuda* faces a wall of flames thrown up by Agni, the God of Fire, who rides a rhinoceros. Krishna appears riding *Garuda* again, on four different occasions in the battle, finally meeting the multi-armed Bana, who rides a chariot pulled by strange-looking lions, 10m before the end of the relief. Krishna, having cut off all but two of Bana's 1,000 hands with a single throw of his discus, emerges victorious, but finally, in the last 5m, kneels before Shiva at Mount Kailasa and agrees to spare Bana's life. Shiva's son Ganesha is seated at his feet. Below, hermits pray in grottoes in Mount Kailasa.

**Battle between gods and *asuras* (North Gallery, West section)**

This next bas-relief, well carved and running for 94m, shows an unspecified battle between gods and *asuras*. The battle is engaged immediately, with the gods facing west the direction in which one is walking, and is interesting chiefly because it details the 21 important gods in the Hindu pantheon, with their *vahana*, or mounts. They include:

Kubera, God of Wealth, on a *Yaksha* (27m from the start)
Agni, God of Fire, in a chariot pulled by a rhinoceros (33m)
Skanda, God ol War, on a peacock (37m)
Indra, King of the Gods, on the elephant Airavata (44m)
Vishnu on *Garuda* (54m)
Yama, Judge and King of the Dead, on a chariot pulled by buffalos (63 m)
Shiva in a chariot pulled by two bulls Nandi (67m)
Brahma on a *hamsa* (71m)
Surya, the Sun God, in a chariot pulled by horses (76m)
Varuna, God of the Ocean, on a 5-headed *naga* (86m)

The multi-headed *asura* Kalanemi appears 60m from the start, in a horse-drawn chariot.

**North-West Corner Pavilion**

Identical in construction to the South-West Corner Pavilion, its four bays are all carved, nine of the 12 scenes have been identified as being from *Ramayana* and it is likely that the remaining three are also in anti-clockwise order, beginning with the North bay, on right as one enters the pavilion:

***North bay, East side*** : Unidentified scene with two noble figures, one of them wearing a three-pronged headdress, seated in a palace, surrounded by courtiers. There are two prone figures, with hair flowing outwards, below the palace.

***North bay, over door :*** From the *Ramayana*: Within a *naga* arch, Rama and Lakshmana, grimacing fiercely, use bow and arrow to slay the demon Viradha, who has captured Sita in the forest. The demon holds Sita in his left arm, and attacks the brothers with a spear.

***North bay, West side :*** From the *Ramayana* : (badly damaged) the scene in which Sita submits to trial by fire to prove her faithfulness to Rama during her period of captivity. No trace of Sita remains in the relief, but one can see the flames clearly above and to the right of where her figure was.

**West bay, North side :** From the *Ramayana :* the return in triumph of Rama to Ayodhya, following victory in the Battle of Lanka. He rides the chariot Pushpaka, belonging to Kubera, drawn by *hamsas* which appear as a frieze over the window. To the right of the window, monkeys dance and play musical instruments in celebration.

***West bay, over door :*** From the *Ramayana :* Rama (centre) and Lakshmana, with a monkey troop behind them at right, forge an alliance with the demon Ravana's brother Vibhisana (with a typical demon headdress, on the left of Rama). The scene is framed in a *naga* arch.

***West bay, South side :*** From the *Ramayana* (partly damaged) Hanuman, having found Sita held captive by Ravana on the island of Lanka, introduces himself by offering Rama's ring. The *rakshasi* Trijata sits on the other side of Sita.

***South bay, West side:*** Unidentified scene in which a four-armed Vishnu, or Krishna, is seated in meditation, with a smaller figure seated on the right, surrounded by *apsaras* dancing on either side and below, and flying above.

***South bay, over door :*** From the *Ramayana*: Framed in a naga arch, Rama and his brother Lakshmana battle the demon Kabandha, who appears as a giant disembodied head (similar to Rahu).

***South bay, East side :*** From the *Ramayana*: at the royal court of King Janaka, Rama wins the hand of the King's daughter Sita in an archery competition, aiming up at a bird perched on a wheel. None of the other competitors were strong enough to draw the bow, which formerly belonged to Shiva.

***East bay, South side:*** From the Life of Krishna: Krishna, riding *garuda*, with his wife Satya- bhama on his right side (standing on *garuda's* hand) returns victorious from having wrested Mt. Maniparvata from the *asura* Naraka. The mountain, a broad triangle with trees, is behind Krishna, while the ranks of his army around and below him carry the spoils of war.

***East bay, over door:*** From the *Ramayana*: Framed in a *naga* arch, Rama and Lakshmana make an alliance with the monkey king Sugriva. Rama is holding a bow in the centre; Sugriva faces him.

***East bay, North side :*** Vishnu Reclining. Near the top, with *apsaras* flying overhead, the god rests on the serpent Ananta, his feet supported by his wife Lakshmi. The serpent floats on the cosmic ocean, represented by shoals of fish. Below, a procession of gods, riding their mounts to ask Vishnu to appear on earth. They are probably acting as guardians of the eight directions (*dikpalas*). They are,

left to right:—

| | |
|---|---|
| Kubera on the shoulders of a *yaksha* (North) | Varuna on a *hamsa* (West) |
| Skanda on a peacock | Vayu on a horse |
| Indra on his elephant Airavata (East) | Yama on a buffalo (South) |
| Agni on a rhinoceros | Ketu on a lion |

On two panels below, next to the window, a frontal view of Surya (the Sun) and Candra (the Moon) on their horse-drawn chariots.

**Battle of Lanka (West Gallery, North section)**

The final bas-relief (if one has made the complete circuit from *Gopura* III West) is a marvellously vital depiction of the climax of the *Ramayana* - the Battle of Lanka, in which Rama and his allies, including the monkey troops, defeat Ravana and rescue Sita. The standard of carving is excellent, and the details of the hand-to-hand fighting closely observed. The main characters are near the centre of the 51m panel. 21m from the start, Rama wields his bow while standing on the shoulders of Hanuman. Next to Hanuman stand the demon Vibhisana (Ravana's brother, with whom Rama has forged an alliance) and Rama's brother Lakshmana. 5m further on is the first of a series of duels spaced 2-3m apart: the monkey Nila vs. the *rakshasa* Prahasta; Valin's son Angada vs. Mahodara (Angada wrenches out the tusk of Mahodara's elephant); 20-armed Ravana on a chariot drawn by monstrous lions; Angada vs. Vajra-damstra; Angada vs. Narantaka; another monkey vs. two dragons, which he holds up by their hind legs; Hanuman vs. Nikumba; and Sugriva vs. Kumba.

Plate-5
Bayon Temple (Mask Images of Lokesvara)

Besides Angkor Wat the Angkor complex has 38 temples but temples ranked by interest include many more huge structures such as **Angkor Thom; Bayon; Ta keo; Ta Prohm; Preah Khan; Bakong and Banteay Srei**. Bayon temple is famous for the huge mask-images of **'Lokesvara'** located on the tops of towers, **(Plate-5)** . The Banteay Srei is known for its minute carvings depicting scenes from life of Krishna.

**References :**


- The author herself visited Cambodia in the year 2010. She studied and photographed the Angkor Wat monuments.
- S.P. Gupta, Shashi Prabha Asthana; Elements of Indian Art, D.K. Print World (P) Ltd., New Delhi, 2009, pp. 170-176.
- Michael Freeman, Claude Jacques; Ancient Angkor, Book guide, River Books Ltd. Bangkok 2010.

डॉ0 भारत भूषण,
अध्यक्ष, ललित कला एवं संगीत विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

**ATISHAY KALIT**
**Vol. 1, Pt. A**
**Sr. 1, 2012**
**ISSN : 2277-419X**

# अजंता की जातक कथाओं का चित्र संसार

बौद्ध धर्माधारित अजंता का गौरवशाली इतिहास युगों–युगों से अपनी विशिष्ट संस्कृति के कारण आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसके गौरव को जातक कथाओं पर आधारित भित्तिचित्रों ने और अधिक बढ़ाया है। इसकी कला की श्रेष्ठता का रहस्य इस शैली के चित्रों में निहित भारतीय कला के आदर्शों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति में है। अजंता की अद्‌भुत सौन्दर्य अभिव्यंजना कराने वाले भित्तिचित्र किसी भी कला रसिक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

अजंता बौद्ध चित्रकला की समृद्ध एवं प्रभावशाली परंपरा का प्रमुख केन्द्र था। उसकी कलाकृतियों की लोकप्रियता का कारण है–भक्ति, उपासना और प्रेम की त्रिवेण ी का मनोरम संगम। इन भव्य एवं विशालकाय कलाकृतियों में अभय, भूस्पर्श एवं धर्मचक्र प्रवर्तन की विभिन्न मुद्राओं द्वारा तथागत के जीवन दर्शन को, विशेष रूप से शान्ति और अहिंसा के उपदेशों को बड़ी कुशलता से अभिव्यंजित किया गया है। उसमें विश्व मानवता के समष्टिमय ऐक्य के दर्शन होते हैं। उसमें राजा–रंक को समान भूमि पर अवस्थित किया गया है जिसकी प्रेरणा के आधार तथागत के मानवतावादी आदर्श थे।[1]

अजंता भित्तियों के कई प्रकार हैं। उसमें चित्रित जातक कथाओं को कलाकारों की कई पीढ़ियाँ कई सौ वर्षों तक बनाती–सवांरती रहीं। इन जातक चित्रों के रेखांकन को भी कई बार दोहराया गया एवं अपेक्षानुसार उनमें रंग भरा गया। अजंता के ये चित्र सातवाहन, वाकाटक, चालुक्य, कुषाण और गुप्त राजाओं के समय बनें।[2]

अजंता में चित्रित जातक कथायें सिर्फ चित्रकला की खूबियों को ही नहीं दर्शाते बल्कि अपने समय की संस्कृति और रहन–सहन की बहुत सी बातों को भी बताते हैं। वहाँ अंकित जातक चित्रों के कलाकार जातक कथाओं को भली–भाँति जानते थे इसीलिए वे उन कथाओं का सफलतापूर्ण अंकन कर सके। चित्रकारों ने जातक चित्रों में कला के आदर्शों को तो अपनाया ही साथ ही साथ अपने समय

की संस्कृति को भी उतारा।

जैसे भाषा में शब्द सबसे महत्वपूर्ण प्रतीक होता है उसी तरह चित्र में आकार (मूर्त–अमूर्त दोनों) महत्वपूर्ण प्रतीक है। लिखी या बोली जाने वाली भाषा से ही कथा या कहानी लिखी या बोली जाती है। जातक कथा के लिए भी लेख या बोली के रूप में एक भाषा आवश्यक थी और उसी भाषा (अधिकतर पालि) का न्यूनाधिक रूपान्तरण या एक प्रकार से कला अनुवाद जातक कथा चित्रों में तत्कालीन चित्रकारों द्वारा हुआ है।

यद्यपि बौद्ध धर्म नास्तिक है। यह न तो वेदों को प्रमाण मानता है और न ही ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारता है। लेकिन इस धर्म में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को बिल्कुल उसी तरह से माना है, जैसा कि हिन्दू शास्त्रों ने स्वीकारा है। प्रारम्भ में अनीश्वरवादी और मूर्ति पूजा विरोधी बौद्ध धर्म आगे चलकर आस्तिक और मूर्ति पूजक धर्म बन गया।

श्रद्धा और भक्ति के कारण बने ये भित्ति चित्र तत्कालीन समाज में बहुत लो. कप्रिय थे। इन भित्ति चित्रों में अधिकांशतः बुद्ध की विभिन्न मुद्राओं, उनके जीवन के प्रति सिद्धान्त, उनके उपदेश, जातक कथाओं के साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक जीवन का भी चित्रण हुआ है।

अजंता के बुद्ध तथा बोधिसत्व देवता न होकर, मानव हैं। वे मानवों के समान ही सुख–दुःख से प्रभावित होते हैं। उनकी महत्ता इसी में है कि परीक्षा के अवसर पर वे अपने सर्वोत्तम गुणों को प्रदर्शित करते हैं। राहुल समर्पण तथा महाजनक जातक की कथाओं में बुद्ध एवं बोधिसत्व अपनी पत्नी के प्रति सच्चे प्रेम के कारण ही सन्यास ग्रहण करने के उपरान्त भी उनसे मिलने जाते हैं और उपदेश देते हैं। उन चित्रों से प्रकट होता है कि बौद्ध धर्म में संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति सहृदयता का भाव है।[3]

अजंता की जातक कथाओं में बन्धुत्व और मैत्री का ऊँचा ध्येय है। ऊँच–नीच, धनी–निर्धन और छोटे–बड़े के भेदभाव का उसमें चिन्ह मात्र नहीं है। विश्व एक कुटुम्ब है और कुटुम्ब के सभी सदस्य बराबर हैं। इन चित्रों को देखने से मन पर आदर्श की गहरी छाप पड़ती है।

अजंता की सभी गुफाओं में जातक कथाओं का अंकन नहीं हुआ है। गुफा सं0–16 में हस्ति जातक, नन्द की कथा, बुद्धोपदेश, सुजाता प्रकरण, महामाया का स्वप्न, बुद्ध जन्म, पाठशाला का दृश्य आदि का अंकन हुआ है।[4]

मंडप में प्रवेश करने पर सर्वथा बायीं ओर बनी कोठरी के द्वार के दायीं ओर महाउमग्ग जातक की कथा चित्रित है। इस जातक कथा में दैवी शक्ति से युक्त महोसघ नामक बालक को कुछ गम्भीर विवादों को सुलझाते चित्रित किया गया है।

10वीं गुफा में षडन्त जातक से सम्बन्धित चित्र बने हैं जिसके नीचे अपूर्ण लेख खुदा है। इस चित्र में बहंगी (काँवर) पर हाथी के दाँतों को लिए कहार, आसन पर राजा के साथ बैठी रानी, रानी की देह भंगिमा इस प्रकार झुकी हुई है जो उसके मूर्छित होने तथा उसके मन में उत्पन्न प्रायश्चित इत्यादि भावों का ज्ञान करा देते हैं। 10वीं गुफा का हस्ति समूह अत्यन्त सुन्दर है। इसके एक तरफ विशाल जनसमूह चित्रित है।

हस्ति जातक से सम्बन्धित एक चित्र अत्यन्त मनोहारी बना है। अपने किसी पूर्वजन्म में बोधिसत्व ने बलशाली हाथी के रूप में जन्म लिया था। यात्रियों की भूख मिटाने के लिए उन्होंने स्वयं झील के समीप स्थित एक पहाड़ी से कूदकर मृत्यु का वरण कर लिया।

छदन्त जातक के अनुसार किसी पूर्व जन्म में तथागत ने छः दाँतों वाले हाथी के रूप में जन्म लिया था। इससे सम्बन्धित चित्र भी अत्यन्त मार्मिक है परन्तु सा. तवाहन काल के चित्रांकन के तुल्य इसको सफलता नहीं मिली।[5]

वेसन्तर जातक की कथा भी 17वीं गुफा में अंकित है। इसके एक दृश्य में विश्वन्तर दान दे रहा है। दान पाने के इच्छुक सबके चेहरों के भाव देखने लायक है। हर व्यक्ति अलग–अलग भाव–भंगिमा में अंकित है।[6] ऐसा लगता है कि जातक कथाओं पर आधारित चित्रों के रचयिता कलाकारों ने षडांग के रूप भेद, प्रमाण और भाव का पालन किया है।

यहाँ सिंहलावदान की कथा भी चित्रित है। इतावली चित्र सुरक्षा विशेषज्ञ सिसोनी ने भी इस चित्र की बहुत प्रशंसा की है।[7] इसमें सिंहल के लिए यात्रा पर निकले 500 अन्य व्यापारियों का जहाज दुर्घटनाग्रस्त होकर नष्ट हो गया है। इस दृश्य की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या याजदानी महोदय ने अपने लेख में किया है।[8]

गुफा सं0–17 में निम्न जातक कथाओं का अंकन हुआ है–छदन्त जातक, बे. सन्तर जातक, महाकपि जातक, हस्तिजातक, हंस जातक, श्याम जातक, मृग जातक, महिष जातक इत्यादि। शिवि जातक, शंखपाल जातक, महाजनक जातक तथा चाम्पेय जातक का अंकन गुफा संख्या–1 में हुआ है। गुफा सं0–2 में महाहंस जातक, विध

ुर पंडित जातक, क्षांतिवादिन जातक तथा गुफा संख्या–10 में साम जातक, छदन्त जातक आदि का अंकन हुआ है।

छदन्त जातक से सम्बन्धित चार चित्र 17वीं गुफा में बने है। पहले दृश्य में रानी अपने निवास में प्रतिशोध की योजना बनाती अंकित है। दूसरे दृश्य में छदन्त हाथी कमल सरोवर में स्नान तथा जलक्रीड़ा करता अंकित है। तीसरे दृश्य में व्याध ाों (शिकारियों) द्वारा बोधिसत्व के दाँत राजमहल में ले जाते चित्रित किया गया है तथा चौथे दृश्य में रानी का दाँतों के देखकर मूर्छित होना दिखाया गया है।[9] शिवि जातक कथा में राजा को स्त्रियों से घिरा अंकित किया गया है।[10]

यद्यपि शंखपाल जातक के चित्र का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है लेकिन उसका शेष भाग मन पर अपनी गहरी छाप छोड़ता है। उपदेश सुनने वालों में एक स्त्री भी ध्यान पूर्वक उपदेश सुनती चित्रित है। उसके बैठने की मुद्रा अत्यन्त लुभावनी है। दर्शक की ओर उसका पीठ है। चित्रकार की कल्पना प्रखरता तथा मुद्रा का अध्ययन श्लाघनीय है।[11] रायकृष्ण दास के अनुसार उसके कोमल शरीर के भंग की तुलना किसी लता से ही की जा सकती है।[12]

महाजनक जातक का चित्र पहली गुफा में अंकित है। इसमें रानी शिवली महाजनक को आकृष्ट करने की चेष्टा कर रही हैं। आगे के चित्र में नृत्य समारोह अंकित है। इसमें अंकित नर्तकी की नृत्य भंगिमा अत्यन्त स्वाभाविक है। गुफा संख्या दो में महाहंस जातक कथा चित्रित है। इस चित्र में बनारस की रानी खेमा के स्वप्न में बोधिसत्व को सुनहरे हंस के रूप में अवतरित होते अंकित किया गया है। इसी गुफा में विधुर पंडित जातक की कथा के रूप में नागराज के महल में विधुर पंडित को प्रवचन करते तथा प्रसन्न मुद्रा में पुण्णक तथा इरन्दती का अंकन हुआ है।[13] दूसरी गुफा का सर्वोत्कृष्ट चित्र क्षांतिवादिन जातक का है। क्रूर काशीराज के रनिवास की स्त्रियां बोधिसत्व का उपदेश सुनने उसे सोता छोड़ चली गयीं। उन स्त्रियों को अनुपस्थित पाकर राजा क्रोध से पागल हो उठा। जब वे वापस आयी तो उनके तथा बोधिसत्व के वध की उसने आज्ञा दे डाली।[14]

भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म के जातक कथाओं के अंकन के समय कलाकारों की दृष्टि समकालीन समाज, राजसभा, नगर तथा तपोवन के दृश्य आदि की ओर घूम जाती है। जातकों में महाजनक जातक, शिविजातक, बेसन्तर जातक, हंस जातक, शंखपाल जातक, चाम्पेय जातक अजन्ता के भित्ति चित्रों में अंकित हुए हैं।

इन जातक कथाओं के अंकन में केवल आध्यात्मिकता ही नहीं बल्कि सांसा.

रिकता का भी चित्रण किया गया है लेकिन उसे पवित्रता के एक ऊँचे आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया गया है।

भाव प्रदर्शन के लिए अजंता के चित्रकारों ने मुख, नेत्र आदि के अतिरिक्त हस्त मुद्राओं का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग किया था। मात्र पैरों की मुद्राओं से बैठने, लेटने, खड़े होने, चलने, शीघ्रता से चलने आदि का बड़ी सफलता से अंकन हुआ है।[15]

अजन्ता के जातक चित्रों का आकृति विधान अत्यन्त रमणीय है। चित्रकारों ने शास्त्रीय निर्देशों एवं कल्पना का समन्वय कर एक अनुपम रूप सृष्टि का निर्माण किया है। चित्र में तीसरे आयाम (गहराई) को चित्रकारों ने सफलता पूर्वक अंकित किया है तथा वार्णिका भंग का ऐसा अद्‌भूत दृष्टांन्त अन्यत्र दुर्लभ है।

अजन्ता चित्रों की प्राण रेखाएं हैं। जातक कथाओं की समर्थ और जीवन्त रेखाओं ने अभिव्यंजना की दृष्टि से उत्कृष्ट आकृतियों को रचा है और आकृतियों को उच्च स्तरीय रंग योजना ने उन्हें आकर्षक एवं मुखर बना दिया।

जातक कथा चित्रों की रेखाएं अत्यन्त सधी हुई हैं। परिष्कृतता का आभास देने के लिए सीमा रेखाओं को अत्यन्त सशक्त अंकित किया गया है तथा भावानुकूल परिस्थितियों में रेखाएं कोमल से कठोर होती गयी हैं।[16] अजन्ता के कलाकार रेखाओं का प्रयोग दृढ़तापूर्वक करते थे तथा रेखा के द्वारा ही गोलाई, उभार एवं स्थिति अन्य लघुता को दिखाने में दक्ष हो गये थे। अजन्ता की रेखाएं विभिन्न रंगों में अंकित हैं। अधिकांश चित्रों की रेखाएं इण्डियन रेड या गाढ़े भूरे रंग में हैं। कभी–कभी काले रंग का प्रयोग भी किया गया है।[17]

अजन्ता के गुप्त कालीन जातक चित्रों में रेखाओं का सौष्ठव, रंगों का वैविध्य, आकृतियों की सुघराई और अलंकारों का मार्दव सराहनीय है। उन में अंग–प्रत्यंगों की परिमिति एवं सन्तुलन और मुद्राओं की गतिमत्ता उच्चकोटि की है। प्रायः एक ही लक्ष्य एवं ध्येय में निहित होने के कारण उनमें एकरूपता है और अपने दर्शकों को वे अतीत के उस वातावरण में ले जाने की पूरी क्षमता रखते हैं कि जब एक महामानव इस धरती पर अवतरित हुआ था, जिसने मानवता को करूणा, दया तथा सहानुभूति का दिव्य संकेत दिया था। इसके अतिरिक्त दृश्यों की अनेकता और भावों की विविधता के अभिव्यंजन का कौशल भी गुप्त युगीन इन चित्रों की विशेषता है।[18]

अजन्ता के चित्रों का उद्‌देश्य पूर्णता की प्राप्ति है। कलाकार एक योगी की भाँति चित्रण करता था। वह अपने उद्‌देश्यों में तन्मय हो जाता था। उसे सिवाय उसके जो वह चित्रित करता था, कुछ दूसरी वस्तु दिखती ही नहीं थी। वह अपने

विषय में तद्रूप बन जाता था।[19] वास्तव में कलाकार कला रचना के समय साधक हो जाता है।

यद्यपि अजन्ता को अंकित करने का उद्देश्य स्पष्टतः साम्प्रदायिक था और इस दृष्टि से उसका महत्व भी सीमित था।[20] किन्तु बुद्ध के पूर्वजन्मों की घटनाओं के अंकन एवं सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से इनका महत्व अतुलनीय है। ये जातक चित्र चित्रकला के विकास, तकनीक तथा परिष्कृत सुरूचि के परिचायक हैं।

अजन्ता में केवल आध्यात्मिकता ही नहीं, सांसारिकता का भी चित्रण किया गया है किन्तु उसे पवित्रता के एक ऊँचे आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। अजन्ता की यह प्रमुख विशेषता है।[21]

कलाकार के दार्शनिक पक्ष को समझना कठिन कार्य हो जाता है, परन्तु उन्होंने ऐसा कोई भी क्षेत्र अछूता न रखा जिसके द्वारा समाज का कल्याण न होता हो। कला और समाज का पारस्परिक संसर्ग था।[22]

दर्शन से जो विश्लेषण निकलता है उसे कला कार्यरूप में पूर्ण करती है। बौद्ध दर्शन से जो भाव–विचार निकला उसे बौद्धकला (जातक कथा चित्रण) के रूप में चित्रकारों ने व्यक्त किया। अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाने का काम भाषा का है। कला भी एक विशेष भाषा है। बुद्ध के विचार को कला भाषा के माध्यम से कलाकारो ने व्यक्त कर जनमानस के लिए ग्राह्य बनाया। किसी वस्तु के विचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि वस्तु हमारे सामने हो। उसके अभाव में भी मनुष्य विचार करता है। बुद्ध के पूर्व जन्मों के मानव या पशु पात्र की अनुपस्थिति में भी तत्कालीन चित्रकारों ने जातक चित्रों की रचना कर बुद्ध के विचारों को सम्प्रेषित किया।

बुद्ध को जब आत्मज्ञान हुआ जो उनके सामने अपने पूर्व जन्मों का समूचा ब्योरा चलचित्र की भाँति घूम गया। बुद्ध के पूर्वजन्म के वे कथानक ही जातक कथा कहलाते है। जातक कथाएँ वास्तव में शिक्षाप्रद हैं। वे संकेत करती है कि बुद्धत्व एक लम्बी साधना की उपलब्धि है। बुद्धत्व जन्म–जन्म की साधना का फल है।

अजन्ता के चित्रों का मुख्य प्रयोजन भगवान बुद्ध के जीवन के विविधि प्रसंगों तथा उनके अनेक पूर्वजन्मों की कथाओं (जातक कथा) का अंकन करना है। अजन्ता के चित्रकारों ने बड़ी कुशलता के साथ भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों पहलुओं को हर दृष्टि से देखा, समझा और उनका गहरी दृष्टि से अध्ययन भी किया। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र की विकसित भावनाओं, रीति–रिवाजों तथा परम्पराओं से प्रेरणा लेकर चित्र बनाया। ये चित्र सुन्दर और सजीव बने हैं तथा उनमें हर पहलू का रूप बहुत सुन्दर एवं निखरा हुआ है, जो देखने योग्य है।[23]

अजन्ता का चित्रकार अपने चित्रों की मुद्राओं के द्वारा वह भाव व्यक्त कर देता

है, जिसे वाणी जन्म–जन्म में भी नहीं कर सकती। इन समस्त मुद्राओं में हाथों और पैरों की मुद्राओं का विशेष स्थान है।[24]

जीवन पर्यन्त इस तपोभूमि में कलाकारों ने योगी की भाँति कला की साधना किया और सिद्धि लाभ के रूप में अजन्ता का अद्‌भुत कला संसार अखिल विश्व को उपहार में दिया।[25]

संदर्भ ग्रन्थ


1. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संस्कृति और कला, पृ0–239
2. वाचस्पति गैरोला, अजंता के गुफाचित्रों की कहानी, पृ0–34
3. डॉ0 गिर्राज किशोर अग्रवाल, कला और कलम, पृ0–75–76
4. राय कृष्ण दास, राय आनन्द कृष्ण, अजंता के चित्रकूट, पृ0–5–7
5. मदनजीत सिंह, द केव पेन्टिंग्स ऑफ अजंता, भाग–14, खण्ड–4, पृ0–30
6. गुलाम याजदानी; अजंता–खण्ड–4, पृ0–43.
7. डा0 आर0ए0 अग्रवाल–कला विलास, पृ0–38.
8. गुलाम याजदानी–अजंता खण्ड–4, पृ0–81
9. डा0 लोकेशचन्द्र शर्मा–भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, पृ0–42
10. देवला मित्र–अजंता, पृ0–18.
11. गुलाम याजदानी–अजंता, खण्ड–1, पृ0–13–14
12. रायकृष्ण दास, राय आनन्द कृष्ण–अजंता के चित्रकूट, पृ0–12
13. अजय मित्र शास्त्री–अजन्ता, पृ0–104.
14. रायकृष्ण दास, राय आनन्द कृष्ण–अजंता के चित्रकूट, पृ0–36.
15. बेन्जामिन रौलेण्ड–द अजंता केव टेम्पल्स्–यूनेस्को, पृ0–13
16. प्रो0 एम0के0 वर्मा–कलाकी ओर, पृ0–47–48.